आधुनिक पद्यावली

विश्व साहित्य ग्रन्थमाला
(कविता-विभाग का प्रथम ग्रन्थ)

आधुनिक पद्यावली

(वर्तमान हिन्दी पद्य-साहित्य की चुनी हुई कविताओं का संग्रह)

सम्पादक—

कालिदास कपूर एम० ए०, एल० टी०

तथा

मातादीन शुक्ल

द्वितियावृत्ति } मई १९३३ { मूल्य एक रुपया
सजिल्द १ रु० ६ आना

विश्व साहित्य ग्रन्थमाला,
मैक्लेगन रोड, लाहौर।

मिलने का पता—
भारती भवन,
बुकसैलर्स, पब्लिशर्स ऐंड स्टेशनर्स
मोहनलाल रोड लाहौर।

मुद्रक—
मलिक हरभगवानदास महरोत्रा
नवजीवन प्रेस, लाहौर।

आधुनिक हिन्दी पद्य

हिन्दी का आधुनिक युग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन-काल से प्रारम्भ होता है। भारतेन्दु जी के पहले केशव से पदमाकर तक कवियों को मुक्तक काव्यों द्वारा घनाक्षरी छन्दों, दोहों या सवैयों में नखशिख वर्णन तथा नायिकाभेद के अतिरिक्त और कोई विषय नहीं था। यह काल भारत के राजनीतिक और धार्मिक पतन का था। देश शान्ति के लिये स्वतन्त्रता येच रहा था और जनता या तो धार्मिक रूढ़ियों की शृंखला में जकड़ी जा रही थी या क्रान्तिकारी युवक पश्चिमी हाव-भाव तथा धर्म की दीक्षा ले रहे थे।

यह दशा लगभग ५० वर्ष रही। देश में शांति स्थापित हुई। शिक्षा का प्रचार हो चला, देश के भीतर बाहर आवागमन के मार्ग खुले। कुछ उत्साही भारतीय वर्षों की नींद से उठे। धीरे-धीरे उन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अवसान काल तक इस जागृति के लक्षण प्रत्यक्ष होने लगे। राजनीतिक क्षेत्र में कांग्रेस की स्थापना हुई। धार्मिक और सामजिक क्षेत्र में आर्यसमाज ने जन्म लिया। हिंदी साहित्य में भारतेन्दु का उदय हुआ।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की विशेषता उसके गद्य भाग ही से है। परन्तु यहां हमें पद्य भाग के विकास पर ही विचार करना है। भारतेन्दु के सामने हिन्दी भाषा में अवधी और ब्रजभाषा के अतिरिक्त खड़ी बोली के कोई नमूने नहीं थे।

इसलिये अपने पद्य में भाषा का आवरण तो उन्होंने पुराना ही रक्खा परन्तु अपने छन्दों का क्षेत्र विस्तीर्ण कर दिया—उर्दू के बहरों तक में कविता की, और विषय में तो उन्होंने नया ही मार्ग दिखा दिया। अल्प अवस्था में काल-कवलित होकर भी उन्होंने हिन्दी पद्य को भारत माता के चरणों की सेवा करने का ही मार्ग दिखाया।

भारतेन्दु के दिखाये मार्ग पर बदरीनारायण प्रेमघन ने बहुत कुछ कविता की, परन्तु प्रतापनारायण मिश्र कुछ और आगे बढ़े। भारतेन्दु से उन्होंने देश-प्रेम की दीक्षा ली और देहाती भाइयों से भाषा की। प्रतापनारायण का जीवन भी अल्प रहा, परन्तु कविता को जनसाधारण की भाषा का आवरण पहना कर उन्होंने उसे जनता की झोपड़ियों तक पहुंचा दिया।

अभी खड़ी बोली हिन्दी के गद्य भाग पर ही अधिकार कर पाई थी। अभी उसे पद्य भाग पर कोई अधिकार नहीं मिला था। यह काम "शङ्कर" जी ने किया। शंकर जी आर्य-समाजी हैं। आर्य समाज का मुख्य काम जाति सुधार है और सुधारक सदा व्यापक भाषा का ही प्रयोग करते आये हैं। खड़ी बोली में ही हिन्दी का व्यापक रूप है। अतः उन्होंने इसी को अपनाया। उन्होंने पुराने ढर्रे की शृङ्गारिक कविता को खड़ी बोली का आवरण पहना कर यह प्रमाणित कर दिया कि शृङ्गार और रस व्रजभाषा की ही बपौती नहीं है, परन्तु उनकी प्रसिद्धि इस मेल की कविता के कारण नहीं है। उन्होंने अपनी काव्य शक्ति को जहां-जहां समाजिक शृंखलाओं को

तोड़ने में लगाया है, वहीं वह स्थायी साहित्य की सृष्टि भी कर सके हैं।

'शंकर' जी के पश्चात् श्रीधर जी पाठक साहित्य संसार में अवतीर्ण होते हैं। पाठक जी की काव्य-धारा में व्रजभाषा और खड़ी बोली का सङ्गम है। कहीं वह एक का आश्रय लेते हैं कहीं दूसरी का। अनुवाद के लिए तो वह खड़ी बोली को ही पसन्द करते हैं, परन्तु प्राकृतिक छटा के वर्णन करने में उन्हें व्रजभाषा का ही आश्रय लेना पड़ता है, उनके देशप्रेम सूचक मुक्तक काव्य दोनों बोलियों में हैं, यद्यपि वह आजन्म खड़ी बोली के ही समर्थक रहे।

द्विवेदी जी का हिन्दी साहित्य में स्थायी स्थान उनके स्वकीय साहित्य निर्माण से उतना नहीं है जितना कि उनके आचार्यत्व से है। श्रीधर जी तो खड़ी बोली के समर्थक ही रहे। द्विवेदी जी सरस्वती संपादक होकर खड़ी बोली में कविता करने की दीक्षा भी देने लगे इस आचार्यत्व के लिये उन्होंने तैयारी भी खूब कर ली थी। संस्कृत फारसी और अँगरेजी के अतिरिक्त उन्हें बँगला, मराठी और गुजराती की भी जानकारी थी। इसलिए वह दीक्षितों को छंद वैचित्र्य और भाव-वैचित्र्य के भी मार्ग दिखा सके।

व्रजभाषा से परिचित साहित्य-समाज को खड़ी बोली में काव्य का माधुर्य चखाना द्विवेदी जी का ही काम था। इसके लिये उन्हें योग्य शिष्य भी मिल गये।

इन शिष्यों में सर्वतोमुखी नाम मैथिलीशरण जी का है। मैथिलीशरण जी ने 'भारत-भारती' जैसे सामयिक विषय पर काव्य लिख कर जनता को खड़ी बोली की ओर आकृष्ट किया

और फिर 'जयद्रथ वध' ऐसे पौराणिक विषय को लेकर खड़ी बोली द्वारा हिन्दीभाषा भाषियों को वीर, शृङ्गार और करुणा रस का स्वाद चखाया। फिर अतुकांत पद्यों में 'मेघनाद वध' और 'विरहिणी व्रजांगना' की रचना कर माइकेल मधुसूदन दत्त की भी आत्मा को हिन्दी साहित्य में सम्मिलित किया। गुप्त जी की प्रतिभाशालिनी लेखनी अपने प्रसाद जनत. को देती जा रही है। इधर 'हिन्दू' के दर्शन हुए थे; अब 'साकेत' के दर्शन शीघ्र ही होंगे।

वयोवृद्ध 'हरिऔध' जी का नाम प्रसंगवश गुप्त जी के बाद आया है। 'हरिऔध' जी का पद्य साहित्य के आन्तरिक चमत्कार की ओर उतना लक्ष्य नहीं है जितना कि उसके बाह्य आवरण की ओर। 'प्रियप्रवास' में काव्यरस को परिपाक करने में वह विशेष सफल रहे हैं, परन्तु चौपदों में मुहावरों का आनन्द अधिक है। सामाजिक सुधार की भी शिक्षा यथेष्ट है, परंतु इसके अतिरिक्त श्रुतिमाधुरी की प्रायः कमी ही है।

'हरिऔध' जी के समकालीन ला० भगवानदीन जी का स्थान उन साहित्य सेवियों में है जो साहित्य के मर्मज्ञ हैं, देश के सच्चे भक्त हैं, जिनके हृदय में काव्य द्वारा इस भक्ति के व्यक्त करने की चेष्टा है, परंतु जो किसी कारणवश इस चेष्टा को प्रकट में विशेष फलीभूत नहीं हो सके। 'दीन' जी आधुनिक विचार धारा का स्वाद तो ले सके, परंतु उसका स्पष्ट वर्णन न कर सके, जो कुछ कर सके, वह उनके वीर पंचरत्न में सन्निहित है।

वर्तमान काल पर खड़ी बोली का आधिपत्य होते हुए भी कुछ ऐसे कवि इस काल में हुए हैं, जिन्होंने व्रजभाषा को ही

अपनाया है, इनमें सर्वतोमुखी नाम बा० जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' का है। रत्नाकर जी की अधिकतर रचना ब्रजभाषा के उपयुक्त छन्दों—घनाक्षरी, सवैया, छप्पय, आदि—में है और विषय भी ऐसे ही हैं जो इस भाषा के उपयुक्त हों जैसे कि 'हरिश्चन्द्र', 'गंगावतरण' और 'उद्धव शतक' में है। इसीलिये इस भाषा के अवनतिकाल में भी वह उसके माधुर्य को प्रकट करने में सफल हुए हैं। 'कविरत्न' सत्यनारायण और राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' का अकाल ही देहावसान हो गया। इसलिये उनकी कृतियां थोड़ी ही हैं, परन्तु उनके अगाध देश प्रेम और उनकी कवित्व शक्ति का अनुमान करते हुए यह भावना अवश्य होती है कि यदि ये कविद्वय अधिक काल तक जीवित रहते तो ब्रज-भाषा द्वारा दैशिक जागृति के भावों को भी प्रकट करने में सफल होते। वियोगीहरि जी ने इस क्षेत्र में 'वीर-सतसई' लिखकर ब्रजभाषा की जो सेवा की है, वह नितांत स्तुत्य है, परन्तु जनता में उसका यथेष्ट प्रचार न होने से यह प्रकट है कि ब्रजभाषा के आवरण में वह वीर रस का परिपाक करने में विशेष सफल नहीं हो सके हैं और इसका कारण यही हो सकता है कि उन्होंने वीर रस के उपयुक्त घनाक्षरी आदि छंदों का चुनाव न करके उसे दोहों में लिखा है।

यों तो युक्तप्रान्त के अतिरिक्त हिन्दी कवियों का प्रादुरभाव राजपूताना, मध्यभारत, बिहार, बंगाल, तथा पञ्जाब आदि प्रांतों में भी हो रहा है, परन्तु मध्यप्रान्त को इनकी अपेक्षा आधुनिक काव्य साहित्य के निर्माण में विशेष महत्व प्राप्त है। मध्यप्रांत के उत्तरीय भाग पर हिन्दी का अकंटक राज्य है। इसलिए यहां हिन्दी के कवियों की अधिक संख्या होना भी स्वाभाविक है।

मध्यप्रांत के कुछ कवि तो द्विवेदी जी के ही शिष्य हैं इसलिए खड़ी बोली में कविता करते हैं, संस्कृत छन्दों को हिन्दी पद्य में स्थान देते हैं, और पौराणिक तथा ऐतिहासिक विषयों को लेकर काव्य रचना करते हैं। इन कवियों में प्रमुख नाम सैयद अमीर-अली 'मीर', कामताप्रसाद गुरु तथा मुकुटधर पांडेय के हैं। परन्तु इनका कविता काल हो चुका, अब उनका काव्य सूत्र पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और मातादीन शुक्ल तथा कवयित्री सुभद्राकुमारी जैसे प्रतिभाशाली साहित्यों के हाथ में है ये कवि परम्परागत विषयों को छोड़ कर साधारण जनता के जीवन नाट्य में अपने काव्य की सामग्री पाते हैं अभी इनके तथा इनके समकालीन अन्य कवियों के सामने समय और क्षेत्र दोनों ही है। यदि इनका प्रोत्साहन हो और देश के भाग्याकाश में स्थिरता आ जाय, तो संभव है कि ये कवि स्थायी साहित्य का निर्माण करने में विशेष समर्थ हो सकें।

द्विवेदी जी के प्रथम शिष्यों ने खड़ी बोली में काव्य कला को परिमार्जित अवश्य किया परन्तु देश की सामयिक दशा का उन पर अधिक रङ्ग नहीं चढ़ सका। वे अधिकतर भारत के प्राचीन गौरव का ही स्वप्न देखते रहे। वर्तमान और भविष्य की उन्हें अधिक चिन्ता नहीं रही। परन्तु कविता के प्रवाह को तो कोई जंजीरों से नहीं जकड़ सकता। समय की प्रगति से गयाप्रसाद शुक्ल तथा रामनरेश त्रिपाठी जैसे कवियों की आत्मा का भी विकास हुआ, जहां हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि प्राचीन गौरव की यवनिका पर भविष्य का आलोक भी प्रतिबिम्बित है। शुक्ल जी 'सनेही' के उपनाम से सरस रचनाएँ करते हैं, परन्तु "त्रिशूल" होकर वह आवेश पूर्ण राष्ट्रीयता का गीत गाते हैं।

एक ओर उनकी सनेही कविताओं में सरसता है तो दूसरी ओर उनकी 'त्रिशूलतरंग' में तूफ़ान का उफ़ान है।

त्रिपाठी जी ने 'पथिक' और 'स्वप्न' खण्ड काव्यों में भावी भारत का स्वप्न देखा है। दोनों कवियों की भाषा जनसाधरण की हिन्दुस्तानी से बहुत कुछ मिलती जुलती है। परन्तु अभी इनमें भावुकता, व्यापकता तथा श्रुति माधुर्य की कमी है। तो भी इनकी रचनाओं का इतना महत्व अवश्य है कि ये किसी भावी कवि सम्राट के पथप्रदर्शन का काम दे सकें।

जयशङ्कर 'प्रसाद' और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' निराली ही पद्धति लेकर साहित्य क्षेत्र में उतरे हैं। प्रसाद जी का वास्तविक क्षेत्र नाटक रचना है। परंतु वह रहस्यवाद के भी आचार्य माने जाते हैं, यद्यपि इन्होंने जो कुछ इस मेल की कविता की है उस में सूफ़ी दार्शनिकता का ही अंश अधिक है। हां, 'निराला' जी को इस 'रहस्यवाद' का आचार्य अवश्य कह सकते हैं। उनकी कविता में वह वेदना है वह व्यापकता है, वह 'मात्रिक' स्वच्छंदता है, और स्थूल का सूक्ष्म से इतना रहस्यपूर्ण सम्मिलन है कि उनकी कविता को 'रहस्यवाद' या 'छायावाद' की श्रेणी में रख सकते हैं। साथ ही उनकी रचना शैली इतनी परिपक्व हो गई है कि वह अधिक स्पष्ट हो कर हमें सूफ़ी दार्शनिक के रूप में दिखाई देने लगते हैं।

अभी इस मेल की कविता का हिंदी साहित्य में उदय ही हुआ है। इसकी उच्छृंखलता और अस्पष्टता ने मर्यादा पूजक काव्य रसिकों को परेशान अवश्य कर दिया है, परन्तु अभी यह कहना कठिन है कि इसका भविष्य क्या होगा। एक भावुक समालोचक का यह कहना है कि रहस्यवाद परंपरागत शृंखलाओं

के विरुद्ध भारत के नवीन यौवन का काव्यात्मक विद्रोह है। हो सकता है, परन्तु यदि यह विद्रोह है तो निःसहाय अपौरुष यौवन का विद्रोह है। उसमें जितनी आह है, उतना उत्साह नहीं। वह दृश्य को हेय समझकर अदृश्य की ओर ताक रहा है। सुमित्रा नन्दन जी पंत तथा महादेवी जी वर्मा जीवन यात्रा की उस मंजिल पर हैं जहां उन्हें अधिक नहीं ठहरना है, वहीं से वह भारत की परिवर्तन शील स्थिति से मुंह मोड़ कर उसकी व्यापक स्थिति को खोज रहे हैं। कार्य दुस्तर है, अभी न उनके जीवन में ही परिपक्वता है न भावों में ही। समय पाकर, यदि इनको नहीं तो कदाचित किसी भावी कवि को भारत की व्यापक आत्मा के दर्शन होंगे। धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्रों में उन पुरुषों का प्रादुर्भाव हो चुका, जिनको भारतीय इतिहास में स्थायी स्थान मिलना है। अभी हिंदी साहित्य के क्षेत्र में किसी ऐसी आत्मा के दर्शन नहीं हुए हैं। जो कुछ अभी तक साहित्य रचना हुई है, वह उस भावी की व्यापक भावुकता के पथ प्रदर्शन का ही काम देकर सुफल होगी।

—यह संकलन भी उसी भावी कवि की शुभाशा पर समर्पित है।

"को जानै केहि रूप में,
आन मिलैं भगवान"।

लखनऊ
१४ जनवरी १९३२

—कालिदास कपूर।

सूची

आधुनिक पद्यावली

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

[जन्म संवत १६०७–मृत्यु संवत् १६४२]

भारतेन्दु का हिन्दीकविता के इतिहास में वह स्थल है जहां माध्यमिक और आधुनिक कविता का संयोग होता है। इनसे कविता की धारा एक दूसरी दिशा को ग्रहण करती है—शृङ्गारिक आवरण को कुछ अंशों में वह उतार फेंकती है और राष्ट्रीयता के आवरण से अपने को सुसज्जित करने लगती है। न केवल विचार क्षेत्र में, प्रत्युत भाषा-क्षेत्र में भी यही क्रम विकसित हो चलता है और व्रजभाषा एवं खड़ी बोली के संयोजक के रूप में उनकी कविता देख पड़ने लगती है। अतएव उनकी कविता में मिश्रित भाषा के दर्शन मिलना असङ्गत नहीं। जीवित तो वह थोड़े ही समय तक रहे, किन्तु इस अल्प काल में ही काव्य नाटक तथा सामयिक कृतियों से साहित्य-उपवन को हराभरा कर गये।

❀ ❀ ❀

पद

(१)

जागो, जागो रे भाई;
सोवत निसि बैस गँवाई, जागो, जागो रे भाई।
निसि की कौन कहै, दिन बीत्यो, कालराति चलि आई;
देखिपरत नहिं हित-अनहित कछु परे बैरि-बस जाई।
निज उद्धार-पंथ नहिं सूझत, सीस धुनत पछिताई;
अबहूँ चेति पकरि राखो किन, जो कछु बची बड़ाई।
फिरि पछिताए कछु नहिं ह्वै है, रहि जैहौ मुँह बाई;
सोवत निसि बैस गँवाई, जागो, जागो रे भाई।

(२)

धनि-धनि भारत की छत्रानी;
वीर-कन्यका, वीर प्रसविनी, वीरवधू जग जानी।
सती-सिरोमनि, धरम-धुरंधर, बुधि-बल-धीरज-खानी;
इनके जस की तिहूँ लोक में अमल धुजा फहरानी.

(३)

सखी-री देखहु बाल विनोद।
खेलत रामकृष्ण दोउ आंगन किलकत हँसत प्रमोद ॥१॥
कबहुँ घुटुरुअन दौरत दोउ मिलि धूर-धूसरित गात।
देखि-देखि यह बाल-चरित छवि जननी बलि २ जात ॥२॥
झगरत कबहुँ दोउ आनंद भरि कबहुँ चलत उठि धाय।
कबहुँ गहत मैया की चोटी माखन मांगत आय ॥३॥

घर-घर ते आवत ब्रजनारी देखन यह आनंद ।
बालरूप क्रीड़त हरि आंगन छवि लखि बलि 'हरिचंद' ।।४।।

(४)

ऊधो जो अनेक मन होते ।
तौ इक स्याम सुँदर को देते इकलै जोग सँजोते ।। १ ।।
एक-सों सब गृह कारज करते एक-सों धरते ध्यान ।
एक-सों स्याम रंग-रंगते तजि लोक लाज कुल कान ।। २ ।।
को जप करै जोग को साधै को पुनि मूँदै नैन ।
हिये एक रस स्याम मनोहर मोहन कोटिक मैन ।। ३ ।।
ह्यांतो हुतो एक ही मन सो हरि लै गये चुराइ ।
'हरीचंद' कोऊ और खोजि कै जोग सिखावहु जाइ ।।४।।

(५)

प्रभु हो ऐसी तो न विसारो ।
कहत पुकारि नाथ तुव रूठे कहुँ न निवाह हमारो ।।
जो हम बुरे होइ नहि चूकत नित ही करत बुराई ।
तौ फिर भले होइ तुम छोड़त काहे नाथ भलाई ।।
जो बालक अरुझाइ खेल में जननी सुधि विसरावै ।
तौ कह माता ताहि कुपित ह्वै ता दिन दूध न प्यावै ।।
मात पिता गुरु स्वामी राजा जो न छमा उर लावै ।
तौ सिसु सेवक प्रजा न कोउ बिधि जग में निबहन पावै ।।
दयानिधान कृपानिधि केशव, करुणा, भक्त-भय-हारी ।
नाथ न्याउ तजते ही बनि है 'हरीचंद' की बारी ।।

———

गंगा छवि

नव-उज्जल जलधार हार हीरक-सी सोहति।
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता मनि पोहति ॥
लोल-लहर-लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन-मन विविध मनोरथ करत मिटावत ॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥
श्रीहरि-पद-नख-चन्द्रकान्त-मन-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म कमण्डल मण्डन भवखण्डन सुर-सरवस ॥
सिव-सिर-मालति-माल भगीरथ नृपति-पुण्य-फल।
ऐरावत-गज-गिरि-पति-हिम-नग-कण्ठहार कल ॥
सगर-सुवन-सठ-सहस्र परस जलमात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन ॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हूँ नहिं तजि रही अंकम लपटाई ॥
कहूँ बँधे नव-घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत-जोहत ॥
धवल धाम चहुँ ओर फहरत धुजा पताका।
घहरत घण्टा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत ॥
कहुँ सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उछारत।
जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
धोवत सुन्दरि वदन करन अतिही छवि पावत।

बारिधि नाते ससि-कलङ्क मनु कमल मिटावत ॥
सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत ।
कमल-बेलि लहलही नवल कुसुमनि मन मोहत ॥
दीठी जहीं जहँ जाति रहति तितहीं ठहराई ।
गङ्गा-छबि 'हरिचन्द' कछू बरनी नहिं जाई ॥

—('सत्य हरिश्चन्द्र' से

प्रतापनारायण मिश्र

[जन्म सम्वत् १६१३—मृत्यु सम्वत् १६५१]

आप उर्दू, फारसी और संस्कृत के विद्वान थे। अकाल ही काल-कवलित हो जाने पर भी आपके स्वतन्त्र तथा अनुवादित ग्रन्थों की संख्या ३२ है। 'हिन्दुस्तान' के सहकारी सम्पादक रहे तथा 'ब्राह्मण' पत्र के सम्पादक। प्रायः बैसवाड़ी भाषा और खड़ी बोली में कविता की है। संस्कृत और फ़ारसी की मिश्रित कविता के नमूने भी मिलते हैं। व्यङ्ग भाव व्यंजित करने में बहुत पटु थे। हास्यरस की भी रचनाएं की हैं—वस्तुतः इसी के कारण आप इतने प्रसिद्ध हैं। आपके स्वच्छन्द स्वभाव की छाया आप की कविता में भी देख पड़ती है।

❀ ❀ ❀

बुढ़ापा

हाय बुढ़ापा तोहरे मारे अबतो हम नकन्याय गयन।
करत धरत कछु बनतै नाहीं कहां जान औ कैस करन॥
छिन भरि चटक छिनै मां मद्धिम जस बुझात खन होय दिया।
तैसै निखवन देखि परत हैं हमरी अकिल के लच्छन॥ १॥
अस कुछ उतरि जाति है जी तें बाजी बिरियां बाजी बात।
कैस्यो सुधि ही नाहीं आवति मूँडुइ काहे न दै मारन॥
कहा चहौं कुछु निकरत कुछु है जीभ राड़ का है यहु हालु।
कोऊ इहि कै बात न समझै चाहे वीसन दांय कहन॥ २॥
दाढ़ी नाक याक मां मिलिगै बिन दांतन मुहुँ अस पोपलान।
दढ़िही पर बहि-बहि आवति है कबौं तमाखू जो फांकन॥
बार पाकि गे रीरौ झुकिगै मूँड़ौ सासुर हालन लाग।
हाथ पांव कछु रहे न आपन केहि के आगे दुख खावन॥ ३॥
यही लकुटिया के बूते अब जस-तस डोलित-डालित है।
जेहि का लैके सब कामन मां सदा खखारत फिरत रेहन।
जियत रहैं महराज सदा जो हम ऐस्यन का पालत हैं।
नाहीं तो अब कोधौं पूँछै केहि के कौने काम के इन॥ ४॥

प्रार्थना

शरणागतपाल कृपाल प्रभो! हमको इक आस तुम्हारी है।
तुम्हरे सम दूसर और कोऊ नहि दीनन को हितकारी है॥
सुधि लेत सदा सब जीवन की अति ही करुना बिसतारी है।

प्रतिपाल करें बिन ही बदले अस कौन पिता महतारी है ॥
जब नाथ दया करि देखत हौ छुटि जात बिथा संसारी है ।
बिसराय तुम्हें सुख चाहत जो अस कौन निंदान अनारी है ॥
परवाहि तिन्हें नहिं स्वर्गहु की जिनको तव कीरति प्यारी है ।
धनि है धनि है सुखदायक जो तव प्रेम सुधा अधिकारी है ॥
सब भांति समर्थ सहायक हौ तव आश्रित बुद्धि हमारी है ।
"परताप नरायण" तौ तुम्हरे पद पंकज पै बलिहारी है ॥ १ ॥
पितु मात सहायक स्वामि सखा तुमही इक नाथ हमारे हौ ।
जिनके कछु और अधार नहीं तिनके तुमही रखवारे हौ ॥
सब भांति सदा सुखदायक हौ दुख दुर्गुन नाशन हारे हौ ।
प्रतिपाल करौ सिगरे जग को अतिसै करुना उर धारे हौ ॥
भुलिहैं हम ही तुमको तुमतौ हमरी सुधि नाहिं बिसारे हौ ।
उपकारन को कछु अंत नहीं छिन ही छिन जो बिसतारे हो ॥
महाराज महा महिमा तुम्हरी समुझैं बिरले बुधिवारे हौ ।
शुभ शान्तिनिकेतन प्रेमनिधे! मन-मन्दिर के उजियारे हौ ॥
यहि जीवन के तुम जीवन हौ इन प्रानन के तुम प्यारे हौ ।
तुम सों प्रभु पाय "प्रताप" हरी किहि के अब और सहारे हौ ॥

नाथूराम 'शंकर' शर्मा

[जन्म संवत् १९१६]

"शंकर" जी ने खड़ी बोली और व्रजभाषा दोनों ही में कविता की है। समय की प्रगति का आपकी कविता पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। समाज-सुधार की ही रचनाएँ इनकी कविता में प्रमुख स्थान रखती हैं। किंतु प्राय: नवीन कलेवर में इन्होंने प्राचीन काव्य आत्मा को ही रूपांतरित करके रक्खा है। भाषा में रौद्र और प्रांजल दोनों रूपों के दर्शन होते हैं। घनाक्षरी छन्द का प्रवेश खड़ी बोली में इन्हीं के द्वारा हुआ है। शङ्करसरोज, अनुरागरत्न, गर्भरंडारहस्य, वायस-विजय आदि कई पुस्तकें इनकी प्रकाशित हुई हैं।

❀ ❀ ❀

वर वांछा

(१)

द्विज वेद पढ़ैं, सुविचार बढ़ैं, बल पाय चढ़ैं सब ऊपर को।
अविरुद्ध रहैं, ऋजु पंथ गहैं, परिवार कहैं वसुधा भर को॥
ध्रुव धर्म धरैं, पर दुःख हरैं, तन त्याग तरैं भवसागर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को।

(२)

नृपनीति जगै, न अनीति ठगै, भ्रम-भूत लगै न प्रजाधर को।
झगड़े न मचैं, खल खर्व लचैं, मद से न रचैं भट संगरको॥
सुरभी न कटैं, न अनाज घटै, सुख भोग डटैं-डपटैं डर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकर को॥

(३)

महिमा उमड़ै, लघुता न लड़ै, जड़ता जकड़ै न चराचर को।
शठता सटकै, मुदिता मटकै, प्रतिभा भटकै न समादर को॥
विकसै विमला, शुभकर्म कला, पकड़ै कमला श्रम के कर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, कर दे कविता कवि शंकरको।

(४)

मत आल जलैं, छलिया न छलैं, कुल-फूल-फलैं तज मत्सर को।
अघ-दम्भ दबै, न प्रपञ्च फबै, गुनमान नवै न निरक्षर को॥
सुमरैं जप-से, निरखैं तप-से, सुरपादप-से तुझ अक्षर को।
दिन फेर पिता, वर दे सविता, करदे कविता कवि शंकर को॥

—:o:—

त्रिशंकु

राजा तू सदेह सदा स्वर्ग में रहैगो ऐसो,
'शङ्कर' असीस जाके मुखते निकसिगो।
ताही गाधिनन्दन कौ योगबल पाय बड़ो,
तीर सो त्रिशंक नभमण्डल में धँसिगो।
वासव ने मारो त्राहि-त्राहि सो पुकारो, मिलो
मुनि को सहारो अधबर ही में बसिगो।
आयो न मही पर न पायौ लोक देवन को,
चुम्बक युगल बीच मानो लोह फँसिगो॥

———

उपालंभ

भरिबो है समुद्र को शम्बुक में छिति को छिगुनी पर धारिबो है।
बँधिबो है मृणाल सों मत्त करी जुही फूल-सों सैल विदारिबो है।
गनिबो है सितारन को कवि 'शङ्कर' रेणु सों तेल निकारिबो है।
कविता समुझाइबो मूढ़न को सविता गहि भूमि पै डारिबो है॥ १॥
शब्द अर्थ सम्बन्ध युक्त भाषा विशाल थल।
शक्ति सरोवर गद्य-पद्य रचना विशुद्ध जल॥
आशय मूल प्रबन्ध नाल भूषण सुन्दर दल।
'शङ्कर' नवरस फूल ग्रन्थ मकरन्द मोद फल॥
परहित पराग छकि-छकि मुदित, रसिक भृङ्गगण गुञ्जरत।
नित या 'साहित्य-सरोज' की उन्नति कवि-कुल-रवि करत॥ २॥

————

याचना

जाति को जीवन दो, भगवान।

आशा का अंकुर उपजा दो, परहित का पीयूष पिला दो;
सेवा का सन्मार्ग सुझा दो, साहस का सोपान—
जाति को जीवन दो, भगवान !

प्रेम एकता का वर-वर दो, ज्ञान उजाला घर-घर कर दो;
कूट-कूट हृदयों में भर दो, 'स्वाभिमान सम्मान'—
जाति को जीवन दो, भगवान !

दलितों के अधिकार दिला दो, बिछुड़ों को फिर गले लगा दो;
भेद-भाव का भूत भगा दो, हों सब लोग समान—
जाति को जीवन दो भगवान !

विधवादल के संकट टारो, गोकुल के कुल क्लेश निवारो;
वलहीनों में बल संचारो, निर्भय करो निदान—
जाति को जीवन दो, भगवान !

देश-भक्ति की ज्योति जगा दो, धर्म-धाम का द्वार दिखा दो;
कर्मवीर बनना बतला दो, कर दयालुता दान—
जाति को जीवन दो, भगवान !

श्रीधर पाठक

[जन्म सम्वत् १६१६—मृत्यु सम्वत् १६८५]

पाठक जी अंगरेज़ी, संस्कृत तथा हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। खड़ी बोली एवं व्रजभाषा दोनों ही में कविता की है। यह प्रकृत कवि थे; प्रकृति सौंदर्य को इन्होंने अपनी रचनाओं में अच्छा चित्रित किया है? इनके "भारतगीत" में कितने ही अच्छे राष्ट्रीयगीतों का संग्रह है। ऊजड़ ग्राम, एकान्तवासी योगी तथा श्रान्त पथिक आदि अंगरेजी से हिन्दी में रूपान्तरित खण्ड काव्य हैं, जो आपके प्रकाण्ड पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हैं, तथा अन्य भाषा से अपने भाषा भण्डार को भरने वालों के लिए पथ प्रदर्शक होने का भी उन्हें श्रेय देते हैं। 'काश्मीर-सुषमा' रचना आप के पार्वतीय प्रकृति पर्यवेक्षण का मधुर प्रसाद है। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापति का आसन भी आपने सुशोभित किया था।

❀ ❀ ❀

सान्ध्य-अटन

विजन वन-प्रान्त था, प्रकृति मुख शान्त था।
अटन का समय था, रजनि का उदय था॥
प्रसव के काल की लालिमा में लहसा
बाल-शशि व्योम की ओर था आ रहा।
सद्य-उत्फुल्ल, अरविन्द-निभ नील सुवि—
शाल नभ-वक्ष पर जा रहा था चढ़ा॥
दिव्य दिनारि की गोद का लाल-सा
या प्रखर भूख की यातना से प्रहित
पारणा रक्त-रस-लिप्सु, अन्वेषणा
युक्त या क्रीड़नासक्त, मृगराज शिशु
या अतिव क्रोध-सन्तप्त जमन्य नृप-
सा कि या अभ्र-बैलून उर में छिपा
इन्द्र, या इन्द्र का छत्र या ताज या
स्वर्ग्य गजराज के भाल का साज या
कर्ण उत्ताल, या स्वर्ण का थाल-सा—
कभी यह भाव था, कभी वह भाव था।
देखने का चढ़ा चित्त में चाव था॥
विजय वन शान्त था, चित्त अभ्रान्त था।
रजनि-आनन अधिक हो रहा कान्त था॥
स्थान-उत्थान के साथ ही चन्द्र-मुख
भी समुज्ज्वल लगे था अधिकतर भला।
उस विमल बिम्ब से अनति ही दूर, उस

समय इक व्योम में बिन्दु-सा लख पड़ा
स्याह था रंग, कुछ गोल मति डोलता
किया अति रंग में भंग उसने खड़ा,
उतरते-उतरते आ रहा था उधर
जिधर को शून्य सुनसान थल था पड़ा।
आम के पेड़ से थी जहां दीखती
प्रेम-आलिंगिता मालती की लता
बस, उसी वृक्ष के सीस की ओर कुछ
खड़खड़ाकार एक शब्द-सा सुन पड़ा
साथ ही पंख की फड़फड़ाहट, तथा
शत्रु निःशंक की कड़कड़ाहट, तथा
पक्षियों में पड़ी हड़बड़ाहट, तथा
कंठ और चोंच की चड़चड़ाहट, तथा
आर्ति-युत कातर स्वर, तथा शीघ्रता-
युत उड़ाहट भरा दृश्य इस दिव्य-छवि-
लुब्ध दृग युग्म को घृणित अति दिख पड़ा।
चित्त अति चकित अत्यन्त दुःखित हुआ ॥

काश्मीर-सुषमा

प्रकृति यहां एकांत बैठि निज रूप सँवारति।
पल-पल पलटति भेस छनिक छवि छिन-छिन धारति ॥
बिमल-अंबु-सर-मुकुरन महँ मुख-बिम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आपही तन मन वारति ॥
सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी।

बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी ॥
बिहरति विविध-विलास-भरी जीवन के मद सनि।
ललकति,किलकति,पुलकति,निरखति,थिरकति बनि ठनि॥
मधुर मंजु छबि पुंज छटा छिरकति बन कुंजन।
चितवति,रिझवति,हंसति,डसति,मुसिक्याति हरतिमन॥
यहँ सुरूप सिंगार रूप धरि-धरि बहु भांतिन।
सर, सरिता, गिरि, सिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, तृन ॥
पूरन करिबे काज कामना अपने मन की ॥
किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज-चरनन की ॥
चहुँ दिसि हिमगिरि-सिखर, हीर-मनि मौलि-अवलि मनु।
स्रवत सरित-सित-धार, द्रवत सोइ चंद्रहार जनु ॥
फल फूलन छबि छटा छई जो बन उपवन की ॥
उदित भई मनु अवनि-उदर सों निधि रतनन की ॥
तुहिन-सिखर, सरिता सर, विपिनन की मिलि सो छबि।
छयी मंडलाकार, रही चारिहुँ दिसि यों फबि ॥
मानहुं मनिमय मौलि-माल-आकृति अलपेली।
बांधी विधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली ॥
अर्द्धचंद्र सम सिखर-स्रैनि कहुँ यों छवि छायी।
मानहुँ चंदन-खौरि, गौरि-गुरु खौरि लगायी ॥
पुनि तिन स्रैनिन बीच बितस्ता रेखु जु राजति।
वैष्णव "श्री" अरु सिव त्रिसूल की आभा भ्राजति ॥
हिम स्रैनिन सों घिरयौ अद्रि-मंडल यह रूरौ।
सोहत द्रोनाकार सृष्टि सुषमा-सुख पूरौ ॥
यहु विधि दृश्य अदृश्य कला कौशल सों छायो।
रच्छन बिधि नैसर्गि मनहुँ विधि दुर्ग बनायो ॥

अथवा विमल बटोरि विश्व की निखिल निकाई।
गुप्त राखिबे काज सुदृढ़ संदूक बनाई॥
कै यह जादू भरी विश्व बाजीगर थैली॥
खेलत में खुलि परी सैल के सिर पै फैली॥
खिली प्रकृति-पटरानी के महलन फुलवारी।
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार-पिटारी॥
कै यह विकसित ब्रह्म वाटिका की कोउ क्यारी।
जोगिराज ने इहां जोग बल ऐंचि उतारी॥
कै सामग्री सहित भैरवी चक्र मँझारी।
परिकल्पित करि धरी शक्ति पूजन की थारी॥
कि धौं चढ़ायो धाता ने भारत के मस्तक।
माया मालिनि रच्यौ चारु कुसुमन कौ गुच्छक॥
कामधेनु पै रवि-हय को खुर छाप सलोनी।
कै वसुधा पै सुधा-धार-ब्रह्म-द्रव-द्रोनी॥
परम पुरुष की पटरानी माया कौ स्यन्दन।
मण्डप छत्र उतारि धर्‌यो, उतर्‌यौ कै नन्दन॥
कै जब लै शिव चले दक्ष-तनया के अंगन।
गिरि शृङ्गन गिरि खिल्यौ प्रिया के कर कौ कंगन॥
विष्णुनाभि तें उग्यौ सुन्यौ जो कमल सहस-दल।
कै यह सोइ सुभग स्वयंभू कौ सुजन्म-थल॥
प्रकृति नटी कौ पटी रहित प्रगट्यौ नाटक-घर।
कै सिवतंत्र सटीक खुल्यौ बिलसत टिखटी पर॥
कै त्रैलोक्य बिभूति भरित अवधूत-कमण्डल।
कै तप-पुंज-प्रसूत विश्व-शोभा-श्री मण्डल॥
सुरपुर अरु सुर कानन की सुठि सुन्दरताई।

त्रिभुवन मोहन करनि कविनु बहु बरनि सुनाई ॥
सो सब कानन सुनी किन्तु नैननि तेहिं देखी ।
जहँ तहँ पथिन पढ़ो, पै सु परतच्छ न पेखी ॥
सो कवियन जो कही कलित सुरलोक निकाई ।
याही कौं अवलोकि एक कल्पना बनाई ॥
सुरपुर अरु कश्मीर दोउन में को है सुन्दर ।
को सोभा कौ भौन रूप कौ कौन सुन्दर ॥
काकौं उपमा उचित दैन दोउन में काकी ।
याकौं सुरपुर की अथवा सुरपुर कौ याकी ॥
याकौं उपमा याही की मोहि देत सुहावै ।
या सम दूजौ ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै ॥
यही स्वर्ग सुरलोक, यही सुर-कानन सुन्दर ।
यहि अमरन कौ ओक, यहीं कहुँ बसत पुरन्दर ॥

('काश्मीर-सुषमा' से)

महावीरप्रसाद द्विवेदी

[जन्म सम्वत् १६२१]

द्विवेदी जी वर्तमान हिन्दी साहित्य-विटप की गद्य और पद्य दोनों शाखाओं के उन्नायकों एवं विधायकों में प्रमुख हैं। सत्कवि, सुसम्पादक तथा सत्समालोचक हैं। वर्तमान खड़ी बोली की कविता को आप के सम्पादन-काल में "सरस्वती" पत्रिका द्वारा जो प्रोत्साहन मिला है, वही खड़ी बोली की कविता के भविष्य का जाग्रत स्मारक है। दर्जनों स्वतन्त्र पुस्तकें लिखीं। संस्कृत काव्यों का हिन्दी में रूपान्तर किया। अंगरेज़ी ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद किया एवं प्रांतिक तथा विदेशी भषाओं से हिन्दी में बहुमूल्य साहित्य प्रदर्शित करने का मार्ग प्रशस्त किया। हिन्दी को आप की सेवाओं पर गर्व है। इस समय आप विश्रान्ति लेकर अपनी जन्मभूमि दौलतपुर (जिला रायबरेली-यू० पी०) में रहते हैं।

❀ ❀ ❀

आर्यभूमि

जहां हुए व्यास मुनि-प्रधान,
रामादि राजा अति कीर्तिमान।
जो थी जगत्पूजित धन्य भूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥१॥

जहां हुए साधु महा महान,
थे लोग सारे धन-धर्मवान।
जो थी जगत्पूजित धर्म-भूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥२॥

जहां सभी थे निज धर्मधारी,
स्वदेश का था अभिमान भारी।
जो थी जगत्पूजित पूज्यभूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥३॥

हुए प्रजापाल नरेश नाना,
प्रजा जिन्होंने सुततुल्य जाना।
जो थी जगत्पूजित सौख्यभूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥४॥

वीरांगना भारत भामिनी थीं,
वीरप्रसू भी कुलकामिनी थीं।
जो थी जगत्पूजित वीर-भूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥५॥

स्वदेश सेवा जन लक्ष-लक्ष,
हुए जहां हैं निज कार्य-दक्ष।

जो थी जगत्पूजित कार्य-भूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥६॥
स्वदेश-कल्याण सुपुण्य जान,
जहां हुए यत्न सदा महान।
जो थी जगत्पूजित पुण्य-भूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥७॥
न स्वार्थ का लेश ज़रा कहीं था,
देशार्थ का त्याग कहीं नहीं था।
जो थी जगत्पूजित श्रेष्ठ-भूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥८॥
कोई कभी धीर न छोड़ता था,
न मृत्यु से भी मुँह मोड़ता था।
जो थी जगत्पूजित धैर्य-भूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥९॥
स्वदेश के शत्रु स्व-शत्रु माने,
जहां सभी ने शर चाप ताने।
जो थी जगत्पूजित शौर्य-भूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥१०॥
विभिन्न थे वर्ण तथापि सारे,
थे एकताबद्ध जहां हमारे।
जो थी जगत्पूजित ऐक्य-भूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥११॥
थी मातृ भूमि प्रति भक्ति भारी,
जहां हुए शूर यशोऽधिकारी।
जो थी जगत्पूजित कीर्ति भूमि

वही हमारी यह आर्यभूमि ॥१२॥

दिव्यास्त्र-विद्या बल, दिव्य यान;
छाया जहां था अति दिव्य ज्ञान।
जो थी जगत्पूजित दिव्य-भूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥१३॥

नये-नये देश जहां अनेक,
जीते गये थे नित एक-एक।
जो थी जगत्पूजित भाग्य-भूमि,
वही हमारी यह आर्यभूमि ॥१४॥

विचार ऐसे जब चित्त आते,
विषाद पैदा करते सताते।
न क्या कभी देव दया करेंगे,
न क्या हमारे दिन भी फिरेंगे ॥१५॥

विधि-विडम्बना

चारु चरित तेरे चतुरानन! भक्ति-युक्त सब गाते हैं।
इस सुविशाल विश्व की रचना तुझसे ही बतलाते हैं ॥
कहते हैं, तुझमें चतुराई है इतनी सविशेष।
जिसको देख चकित होते हैं शेष, महेष, रमेश ॥
चतुर्वेद की शपथ तुझे है, मुझे बात यह बतलाना।
तूने भी, कह क्या अपने को महाचतुर मन में माना ॥
भली बुरी बातें सुत की सब पिता सदा सुन लेता है।
अनुचित सुन लेवे तो भी वह उसे क्षमा कर देता है ॥
तेरा तो त्रिभुवन में विश्रुत परम पितामह नाम।

फिर तुझसे कहने सुनने में भय का है क्या काम?
दोष राशि से दूषित तेरी करतूतें हम पाते हैं।
अतः यहाँ पर कोई-कोई उनमें से दरसाते हैं॥
विक्रम भोजादिक महीपवर मही मयंक महाज्ञानी।
सरस्वती के सच्चे सेवक देवद्रुम समान दानी॥

तूने इनसे भूतल भूषित किया अल्प ही काल।
भूल और क्या हो सकती है इससे अधिक विशाल!
काव्य-कला-कौशल सम्बन्धी रुचिर सृष्टि के निर्माता।
मधु-मिश्री से भी अति मीठी वचन-मालिका के दाता॥
कालिदास भवभूति आदि को अन्य लोक पहुँचाय।
कविता-वधू विधे! तूने ही विधवा करदी हाय॥
कपिल, कणाद, पतञ्जलि, गौतम, व्यास आदि वर विज्ञानी।
जिनकी कीर्ति-ध्वजा अभी तक सतत फिरे है फहरानी॥
उन को भी तूने क्षणभंगुर किया विवेक विहाय।
दिखलावें हम तेरी किन-किन भूलों का समुदाय॥
रम्य रूप रसराशि, विमल वपु, लीला-ललित मनोहारी।
सब रत्नों में श्रेष्ठ शशिप्रभ अति कमनीय नवल नारी॥
रच फिर उसको जराजीर्ण तू करता है निःशेष।
भला और तुझ जरठ जीव से क्या होगा सुविशेष?
कटु इन्द्रायण में सुन्दर फल, मधुर ईख में एक नहीं।
बुद्धिमान्य की सीमा तूने दिखलाई है कहीं-कहीं॥
निपट सुगन्धहीन यदि तूने पैदा किया पलाश।
तो क्या कञ्चन में भी तुझको करना न था सुवास?
विश्व बनाने वाला तुझको सब कोई बतलाते हैं।
विहग बनाने में भी तेरी भूल किन्तु हम पाते हैं॥

यदि तेरे कर में कुछ होता कला-कुशल लवलेश।
काक और पिक एक रङ्ग के क्यों होते लोकेश!
वायस विहरैं हैं गलियों में हंस न पाये जाते हैं।
कण्टकारि सब कहीं, कमल-कुल कहीं-कहीं दिखलाते हैं॥
मृगमद पाने का क्या कोई था ही नहीं सुपात्र,
जो तूने उससे पशुओं का किया सुगन्धित गात्र?
नित्य असत्य बोलने में जो तनिक नहीं सकुचाते हैं
सींग क्यों नहीं उनके सिर पर बड़े-बड़े उग आते हैं।
घोर घमण्डी पुरुषों की क्यों टेढ़ी हुई न लङ्क,
चिन्ह देख जिसमें सब उनको पहचानते निशङ्क?
दुराचारियों को तू प्रायः धर्माचार्य बनाता है!
कुत्सित कर्म-कुशल कुटिलों को अन्तरङ्ग उपजाता है!
मूर्ख धनी विद्वज्जन निर्धन उलटा सभी प्रकार।
तेरी चतुराई को ब्रह्मा बार-बार धिक्कार!!
घोड़े जहाँ अनेक गधों का वहाँ काम क्या था सच कह!
विदित हो गई तेरी सारी चतुराई तू चुप ही रह॥
शुद्धाशुद्ध शब्द तक का है जिनको नहीं विचार।
लिखवाता है उनके कर से नए-नए अखबार॥
विधे, मनोज्ञ मातृभाषा के द्रोही पुरुष बनाना छोड़।
राम नाम सुमिरन कर बुड्ढे और काम से अब मुख मोड़॥
एकानन हम, चतुरानन तू, अतः कहें क्या और विशेष।
बुद्धिमान जन को इतना ही बतलाना बस है भुवनेश!

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

[जन्म सम्वत्–१६२२]

हरिऔध जी हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ आचार्य एवं महाकवि हैं। संस्कृत, फारसी, उर्दू, अँग्रेजी तथा बँगला के विद्वान हैं। गद्य और पद्य दोनों ही के आप यशस्वी लेखक हैं। आपका 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' नामक गद्य-ग्रन्थ सिविलसर्विस परीक्षा में पढ़ाया जाता है। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों ही में आपने कविता की है। 'प्रियप्रवास' नामक महाकाव्य तथा 'चुभते चौपदे' एवं 'चोखे चौपदे' तथा 'अधखिला फूल' आपकी प्रसिद्ध कृतियां हैं। रस-कलश-नामक रस-सम्बन्धी ग्रन्थ आपका अभी प्रकाश में नहीं आया है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति का आसन भी आप सुशोभित कर चुके हैं। इन दिनों आप हिन्दू विश्व-विद्यालय काशी में हिन्दी के प्रोफेसर हैं।

* * *

यशोदा का विरह

प्रिय पति, वह मेरा प्राणप्यारा कहां है।
दुख-जलनिधि डूबी का सहारा कहां है॥
लख मुख जिसका मैं आज लों जी सकी हूँ,
वह हृदय हमारा नैन-तारा कहां है॥१॥

पल पल जिसके मैं पन्थ को देखती थी।
निशिदिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती॥
उर पर जिसके है सोहती मुक्तमाला,
वह नवनलिनी से नैनवाला कहां है॥ २॥

मुझ विजित-जरा का एक अधार जो है।
वह परम अनूठा रत्न सर्वस्व मेरा॥
धन मुझ निधनी का, लोचनों का उजाला,
सजल जलद की-सी कान्तिवाला कहां है॥ ३॥

प्रतिदिन जिसको मैं अङ्क में नाथ लेके।
निज सकल कुअंकों की क्रिया कीलती थी॥
अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला निराला,
वह किसलय केसे अङ्गवाला कहां है॥ ४॥

वर वदन विलोके फुल्ल अंभोज-ऐसा,
करतल गत होता व्योम का चन्द्रमा था॥
मृदु रव जिसका है रक्त सूखी नसों का,
वह मधुमयकारी मानसों का कहां है॥ ५॥

रसमय वचनों से नाथ जो सर्वदा ही।
मम सदन बहाता स्वर्ग-मंदाकिनी था॥

श्रुति-पुट टपकाता बूँद जो था सुधा की,
वह नव-ध्वनि न्यारी मञ्जुता की कहां है ॥ ६ ॥
स्वकुल जलज का है जो समुत्फुल्लकारी,
मम परम निराशा-यामनी का विनाशी ॥
व्रज-जन विहगों के वृन्द का मोद-दाता,
वह दिनकर-शोभी रामभ्राता कहां है ॥ ७ ॥
मुख पर जिसके है सौम्यता खेलती-सी,
अनुपम जिसका हूँ शील-सौजन्य पाती ॥
पर दुख लख के है जो समुद्विग्न होता—
वह सरलपने का स्वच्छ सोता कहां है ॥ ८ ॥
गृहतिमिर-निराशा का समाकीर्ण जो था,
निज मुख-दुति से है जो उसे ध्वंसकारी ॥
सुखकर जिससे है कामिनी जन्म मेरा,
वह रुचिकर चित्रों का चितेरा कहां है ॥ ९ ॥
सहकर कितने ही कष्ट औ सङ्कटों को।
बहु यतन कराके पूजके निर्जरों को ॥
यह सुअन मिला है जो मुझे यत्न-द्वारा,
प्रियतम ! वह मेरा कृष्ण प्यारा कहां है ॥ १० ॥
मुखरित करता जो सद्म को था शुकों-सा,
कलरव करता था जो खगों-सा बनों में ॥
सुध्वनित पिक लौं जो वाटिका था बनाता,
वह बहु विधि कंठों का विधाता कहां है ॥ ११ ॥
वन-वन फिरती हैं खिन्न गायें अनेकों।
शुक भर-भर आंखें भौन को देखता है ॥
सुधि कर जिसकी हैं सारिका रोती,नित्य

वह निधि मृदुता का मञ्जु मोती कहां है ॥१२
गृह-गृह अकुलाती गोप की पत्नियां हैं।
पथ-पथ फिरते हैं ग्वाल भी उन्मना हो ॥
जिस कुँअर बिना मैं हो रही हूँ अधीरा,
वह खनि सुषमा का स्वच्छ हीरा कहां है ॥१३॥
बहु विभव वहां का देख के श्याम भूला।
वह विलम गया या वृन्द में बालकों के ॥
फँस कर जिसमें हा! लाल छूटा न मेरा,
सुफलक-सुत ने क्या जाल कोई बिछाया ॥१४॥
परम शिथिल हो के पन्थ की क्रान्तियों से,
वह ठहर गया है क्या किसी वाटिका में ॥
प्रियतम तुमसे या दूसरों से जुदा हो,
वह भटक रहा है या कहीं मार्ग ही में ॥१५॥
विपुल कलित कुञ्जें कालिन्दी-कूल वाली,
अतुलित जिन में थी प्रीति मेरे प्रियों की ॥
पुलकित चित से वे क्या उन्हीं में गये हैं,
कतिपय दिवसों की श्रांति उन्मोचने को? १६॥
विविध सुरभिवाली मण्डली बालकों की,
पथ युगल सुतों ने क्या कहीं देख पाई ॥
निज सुहृद जनों में, वत्स में, धेनुओं में,
बहु बिलम गये वे क्या इसी से न आये? १७॥
निकट अति अनूठे नीप फूले फले के,
कलकल बहती जो धार है भानुजा की ॥
अति प्रिय सुत को है दृश्य न्यारा वहां का,
वह समुद उसे ही देखने क्या गया है? १८॥

यदि वह अति नेही शील सौजन्यशाली,
तजकर निज भ्राता को नहीं सद्म आया ॥
व्रज-अवनि बता दो नाथ कैसे बसेगी !
बिन वदन विलोके आज मैं क्यों बचूंगी ॥१६॥

हा ! वृद्ध के अतुल धन हा ! वृद्धता के सहारे ।
हा ! प्राणों के परम प्रिय हा ! एक मेरे दुलारे ॥
हा ! शोभा के सदन-सम हा ! रूप लावण्यवारे ।
हा ! बेटा हा ! हृदय-धन हा ! नैनतारे हमारे ॥२०॥

कैसे होके अलग तुझसे आज लौं मैं बची हूँ ।
जो मैं ही हूँ समझ न सकी तो तुझे क्यों बताऊँ ॥
हा ! जीऊँगी न अब, पर है वेदना एक होती ।
तेरा प्यारा वदन मरती बार मैंने न देखा ॥२१॥

('प्रियप्रवास' से)

काँटा और फूल

है न कांटों-सा उभरना काम का ।
क्या रहा, जब दूसरों को दुख दिया ॥
सीख लेवें क्यों न खिलना फूल-सा ।
जब किया तब और को पुलकित किया ॥१॥

रङ्ग जिन पर हो भलाई का चढ़ा ।
सब जगह उनकी घटी सब दिन रही ॥
डालियों में है न कांटों की कमी ।
पर दिखाते फूल हैं दो चार ही ॥२॥

जब उठीं आंखें हमें कांटे मिले ।

नोक आपनी वैसे ही सीधी किये ॥
पर नहीं जाना निराले फूल ये,
कब खिले और किस समय कुम्हला गये ॥३॥
क्या बतावें है कलेजा मल रहा।
कुछ न कांटों का हुआ इनके लिए ॥
धूप निकली, लू चली, आंधी उठी।
हा इन्हीं सुकुमार फूलों के लिए ॥४॥
दूर आंखों से न वह कांटा हुआ।
नोक से जिसकी लहू कितना बहा ॥
पर बिचारी तितलियों के वास्ते।
दो दिनों भी फूल का न समां रहा ॥५॥
किस लिए कांटे बहुत दिन तक रहें।
आह! मेरा जी बहुत खिजला गया ॥
किस लिए इतना अनूठा फूल यह।
आज फूला और कल कुम्हला गया ॥६॥

—०—

कोर-कसर

(चौतुका)

देस का दुख न देखने वाले।
देख पाये कहीं न तुम जैसे।
आंख ऊँची न कर सके जब तो।
आंख ऊँची भला रहे कैसे ॥१॥
व बिचारी फूल जैसी लड़कियां।
जो नहीं बलिदान होते भी अड़ीं।

आंख वाले हम तुम्हें कैसे कहें।
जब नहीं आंखें अभी उन पर पड़ीं ॥२॥

जब कि कस ली पत गवांने पर कमर।
पत उतरने में रहा तब कौन डर।
बे परदा क्यों हों न परदे वालियां।
पड़ गया परदा तुम्हारी आंख पर ॥३॥

हम कहें कैसे कि आंखें हैं खुलीं।
सामने जब सांसतें हैं हो रहीं।
निज बुरी गत देखकर नहि देखते।
आंख का है बन्द कर लेना यही ॥४॥

नित कचूमर धरम का है कढ़ रहा।
है भली करनी कलपती दुख भरी।
जो गई हैं बाहरी आंखें बिगड़।
तो गई क्यों फूट आंखें भीतरी ॥५॥

लड़ पड़े पोत के लिये सग से।
दूसरे लूट ले चले मोती।
एक क्या लाख बार देखे भी।
आंख इसकी हमें नहीं होती ॥६॥

जब कि दबते गये दबाने से।
लोग कैसे न तब दबावेंगे।
जब कि हम आंख देख लेवेंगे।
लोग आंखे न क्यों दिखावेंगे ॥७॥

दिन गये सिंह मार लेने के।
है भला कौन मार मन पाता।
मारते हैं जमा पराई अब।

है हमें आंख मारना आता ॥८॥

मिट चले हैं एक दिन मिट जायेंगे।
सहेंगे फूटी न आंजी सहेंगे।
क्या बचायेंगे किसी बेदीन को।
हम सदा आंखें बचाते रहेंगे ॥९॥

बिदअते देख-देख अपनों की।
चोट जी ने न भूल कर खाई।
डूबता देख जाति का बेड़ा।
कब कभी आंख डबडबा आई ॥१०॥

लाला भगवानदीन "दीन"

[जन्म सम्वत् १९२३–मृत्यु सम्वत् १९८७]

'दीन जी' हिन्दी गद्य और पद्य के यशस्वी लेखक थे। जैसा पद्य में, वैसा ही अलङ्कार एवं समालोचना-क्षेत्र में भी आपकी अच्छी पैठ थी। 'हिम्मतबहादुर बिरदावली' 'सुजान-चरित' 'राजविलास' आदि ग्रन्थ आपके द्वारा संशोधित होकर प्रकाश में आये। बिहारी बोधिनी, कवितावली आदि टीकाएं लिखीं। वीरपञ्चरत्न तथा सूक्तिसरोवर नाम की दो पुस्तकें पद्य में लिखीं। वर्षों तक 'लक्ष्मी' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन किया। 'अलङ्कार मञ्जूषा' नामक अलङ्कार विषयक एक पुस्तक लिखी। काशी नागरी प्रचारणी सभा के सुप्रसिद्ध कोष 'हिन्दी-शब्दसागर' के सम्पादन में आप का काफी हाथ रहा। काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में आप हिन्दी के लेक्चरार थे तथा काशी में ही आपके नाम से 'भगवानदीन-साहित्य विद्यालय' भी स्थापित है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती बुन्देलाबाला (सम्वत् १९४०-१९१७) भी सुकवियित्री थीं। 'माता और पुत्र' नामक रचना आप ही की कृति है।

❀ ❀ ❀

कवि का आदर्श

वीरों की सुमाताओं का यश जो नहीं गाता।
वह व्यर्थ सुकवि होने का अभिमान जनाता ॥
जो वीर सुयश गाने में है ढील दिखाता।
वह देश के वीरत्व का है मान घटाता ॥
दुनिया में सुकवि नाम सदा उसका रहेगा।
जो काव्य में वीरों की सुभग कीर्ति कहेगा ॥१॥

'वाल्मीकि' ने जब वीरचरित राम का गाया।
सम्मान सहित नाम अमर अपना बनाया ॥
श्रीव्यास ने तब नाम सुकवियों में है पाया।
भारत के महायुद्ध का जब गीत सुनाया ॥
कब चन्द भी हिन्दी का सुकवि आदि कहाता।
यदि वीर पिथौरा का सुयश-गान न गाता ॥ २ ॥

'होमर' जो है यूनान का कवि आदि कहाया।
उसने भी सुयश वीरों का है जोश से गाया ॥
'फ़िरदौसी' ने भी नाम अमर अपना बनाया।
जब फ़ारसी वीरों का सुयश गाके सुनाया ॥
सब वीर किया करते हैं सम्मान क़लम का।
वीरों का सुयश गान है अभिमान क़लम का ॥ ३ ॥

इस वक्त हैं हिन्दी के बहुत काव्य-धुरंधर।
आचार्य कोई, इन्दु कोई, कोई प्रभाकर ॥
काव्याद्रि कोई कोई हैं साहित्य के सागर।
हैं [illegible]ाव्य के कानन के कोई सिंह भयंकर ॥

मैं काव्य-सुकुल-कामिनी का बाल हूं अज्ञान।
इस हेतु मुझे भाता है माताओं का यश गान ॥ ४ ॥

चांदनी

खिल रही है आज कैसी भूमितल पर चांदनी।
खोजती फिरती है किसको आज घर-घर चांदनी ॥
घनघटा घूंघट उठा मुसकाई है कुछ ऋतु शरद।
मारी-मारी फिरती है इस हेतु दर-दर चांदनी ॥
रात की तो बात क्या दिन में भी बनकर कुँद कांस।
छाई रहती है बराबर भूमितल पर चांदनी ॥
सेत सारी युक्त प्यारी की छटा के सामने।
जंचती है ज्यों फूल के आगे हो पीतर चांदनी ॥
स्वच्छता मेरे हृदय की देख लेगी जब कभी।
सत्य कहता हूं कि कंप जायेगी थर-थर चांदनी ॥
नाचने लगते हैं मन आनंदियों के मोद से।
मानुषी मन को बना देती है बन्दर चांदनी ॥
भाव भरती है अनूठे मन में कवियों के अनेक।
इनके हित हो जाती है जोगी मछंदर चांदनी ॥
वह किसी की माधुरी मुसकान की मनहर छटा।
'दीन' को सुमिरन करा देती है अक्सर चांदनी ॥

माता और पुत्र

माता,—

हे प्यारे कदापि तू इसको तुच्छ श्याम रेखा मत मान।
यह है शैल हिमाचल इसको भारत भूमि पिता पहचान ॥

नेह सहित ज्यों पितु पुत्रों का सादर पालन करता है।
यह हिम गिरि त्योंही भारत हित पितृभाव हियधरता है॥
गंगा यमुना युगल रूप से प्रेम धार का देकर दान।
भारत भूमि-रूप दुहिता का नेह सहित करना सम्मान॥

पुत्र,—

यह जो बाम ओर नक्शे के रेखामय अतिशय अभिराम।
शोभामय सुन्दर प्रदेश है, मुझे बता दे उसका नाम॥

माता,—

बेटा यह पञ्जाब-देश है, पुण्यभूमि सुख शान्ति-निवास।
सर्व प्रथम इस थल पर आकर किया आर्यों ने निज वास।
कहीं गान ध्वनि, कहीं वेद ध्वनि, कहीं महामन्त्रों का नाद।
यज्ञ-फूल से रहा सुवासित यह पंजाब सहित आह्लाद॥
इसी देश में बस के पोरस ने रक्खा है भारत मान,
जब सम्राट सिकन्दर आकर किया चाहता था अपमान॥
इस से नीचे देख, पुत्र, यह देश दृष्ट जो आता है।
सकल बालुकामय प्रदेश यह राजस्थान कहाता है॥
इसके प्रति गिरिवर पर, बेटा, अरु प्रत्येक नदी के तीर।
देश-मान हित करते आये आत्मविसर्जन क्षत्री वीर॥
कोई ऐसा स्थान नहीं है जहां अमर चिन्हों के रूप।
वीर कहानी रजपूतों की लिखी न होवे अमर अनूप॥
क्षत्री-कुल-अवतंस वीर वर है 'प्रताप' जी का यह देश।
रानी 'पद्मावती' सती ने यहीं किया है नाम विशेष॥
क्षत्री वंश जात को चहिये करना इसको नित्य प्रणाम।
क्षत्री दल का जग में इससे सदा रहेगा रोशन नाम॥

———

बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए०

[जन्म सम्वत् १६२३]

रत्नाकर जी वर्तमान ब्रजभाषा काव्य सम्राट हैं। ख्यातनामा महाकवि हैं, तथा आपकी समस्त रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं। अँगरेज़ी, फ़ारसी, ब्रजभाषा और अवधी के मर्मज्ञ हैं। हिंडोला, समालोचनादर्श, साहित्य-रत्नाकर, घनाक्षरी नियमरत्नाकर, हरिश्चन्द्र आदि काव्यग्रन्थों की रचना की है। हमीरहठ, हितकारणी तथा दूलह कवि कृत 'कण्ठाभरण' का सम्पादन किया है। विहारी सतसई की रत्नाकरी टीका आपकी 'विहारीरत्नाकर' नाम से प्रसिद्ध है। आपके 'गङ्गावतरण' तथा उद्धव-शतक' नामक काव्यग्रन्थ बहुत उच्च कोट के हैं। सम्वत् १६८७ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति का आसन सुशोभित कर चुके हैं। संयुक्त प्रान्त की हिन्दुस्थानी एकेडेमी के तथा काशीनागरी प्रचारिणी सभा के लब्धप्रतिष्ठ एवं प्रमुख सदस्य हैं। ब्रजभाषा साहित्य आपसे गौरवान्वित हुआ है।

❀ ❀ ❀

गजेन्द्र-मोक्ष

(१)

रमता रमा के संग आनंद-उमंग भरे,
अंग परे थहरि मतंग अवराधे पै।
कहै "रतनाकर" बदन दुति औरै भई,
बूँदैं छई छलकि दृगानि नेह नाधे पै॥
धाए उठि, बार न उबारन में लाई नैंकु,
चंचला हू चकित रही ह्वै वेग साधे पै॥
आवत वितुंड की पुकार मग आधे मिली,
लौटत मिल्यौ त्यौं पच्छिराज मग आधे पै॥

(२)

संगवारे महत मतंगनि के संग सबै,
निज-निज प्रान लै पराने पुसकर तैं।
कहै "रतनाकर" बिचारौ बल-हारयौ तब,
टेरि हरि पारयो कलकंज गहि सर तैं॥
पहुंचन पायौ पुनि बारि लौं न जौलौं वह,
तौलौं लियौ लपकि उबारि हरबर तैं॥
एक तैं ललायौ, चक्र एक तैं चलायौ,
गह्यौ एक तैं भुसुँड, पुंडरीक एक कर तैं॥

(३)

सुंड गहि आतुर उबारि धरनी पै धारि,
विवस बिसारि काज सुर के समाज कौ।

कहै "रतनाकर" निहारि करुना की कोर,
बचन उचारि, जो हरैया दुख साज कौ ॥
अंबु पूरि दृगनि बिलंब आपनोई लेखि,
देखि-देखि दीन्ह छत दंतनि दराज कौ ।
पीतपट लै-लै के अंगौछत सरीर, कर,
कंजनि सों पोंछत मुसुंड गजराज कौ ॥

वृन्दावन में वर्षाऋतु

परम रम्य आराम सुखद वृन्दावन नित ही ।
पर पावस-सुषमा असीम जानत कछु चित ही ॥
हरित भूमि चहुं ओर मोदमंदित अति सोहै ।
नर की कहा चलाय देखि सुर मुनि मन मोहै ॥
मानहु पन्नगसिला संचि बिरची बिरंचिवर ।
जेहि प्रभाउ नहिं करत नेकु बाधा भव-विषधर ॥
इत उत ललित लखाति चटक रंग बीर बधूटी ।
मनहु अमल अनुराग राग की उपजीं बूटी ॥
तरवर तहां अनेक एक सों एक सुहाये ।
नाना विधि फल फूल फलित प्रफुलित मन भाये ॥
कहूँ पाँति बहु भाँति बिबिध आकृति करि ठाढ़े ।
कहूँ झुंड के झुन्ड झुकैं झूमैं गुथि गाढ़े ॥
चंपा गुंज लवंग माधवी लता सुहाई ।
कुसुम कलित अति ललित तमालन सों लपटाई ॥
मंजुल सघन निकुंज कहूँ सोभा सरसानी ।
गुंजत मत्त मलिंद पुंज जिनमें रसदानी ॥

जहँ तहँ सरवर झील ताल सोहत जल पूरित ।
सलिल सिमटि कहुँ लघु सरिता धावति धर धूरित ॥
अति मलीन दुतिहीन बिरह अधीन छीन तन ।
मानहु खोजत फिरत जीवनाधार तिया गन ॥
एक ओर गिरिराज लसत गिरि गौरवकारी ।
परम गूढ़ सुविलास रास-रस को अधिकारी ॥
लहलहात है हरित गौर श्यामल रँग राँचो ।
पुलकित तन रस-सराबोर अबिचल व्रत सांचो ॥
भंजन भव भ्रम काच कुलिस आगार मनोहर ।
गंजन हित तमतोम तरनि उदयाचल सुंदर ॥
प्रेम पयोधि रतन-दायक मंदर कन जाके ।
कंचन करन हरन कलमस पारस मनसा के ॥
जित तित नाचत मोर पपीहा कल धुनि गावत ।
सजत सरंगी भृङ्ग मेघ मिरदंग बजावत ॥
कूदत करत कलोल दरत दादुर करतारैं ।
तेहि सुभ सुखद समाज माँझ झिल्ली झनकारैं ॥
मनहु तिहूँ पुर की सुषमा बृंदावन आई ।
बनदेवी सुखसाज साजि बरतन पहुनाई ॥
पाय प्रसून प्रसंग पौन परिमल बगरावत ।
दाता ढिग सों आय गुनी ज्यों जस फैलावत ॥
चहुँ दिसि ते घन घोर घेरि नभमंडल छाये ।
घूमत झूमत झुकत ओनि अतिसम नियराये ।
दामिनि दमक दिखाति दुरति पुनि दौरत लहरै ।
छुटी छबीली छटा छोर छिन-छिन छिति छहरै ॥
मानहु मंचि सिंगार हास के तार सोहाये ।

धूपछाँह के बीनि बितान अतन तनवाये ॥
पाय प्रसंग प्रमोद पवन को सो हलि हलकै।
पल-पल औरै प्रभापुंज अद्भुत गति झलकै ॥
कहुँ तिनके बिच लसति सुभग बगपांति सुहाई।
मुकतालर की मनहु सेत झालर लटकाई ॥
ठाम एक अभिराम मंडलाकृति तहँ भ्राजै ।
जाको बानक बिसद बिसेस बिचित्र बिराजै ॥
मेदिनि मंडल मंजु मुद्रिका मनि मन मानो ।
जेहि अंकित चित होत प्रेम पथ को परवानो ॥
सम उद्यान के बिटप बलित बल्ली चहुँ ओरन।
हरित बनात कनातन पै तानी जनु तोरन ॥
तिन पै रङ्ग बिरङ्ग सुमन पल्लव पंछीगन।
सो मानों बहुचित्र बिचित्र रचे मनभावन ॥
पत्र बीच ह्वै झलकति कहूँ कालिंदनंदिनी।
कोटि-कोटि कलि कलुष करारनि कर निकंदनि ॥
रस सिंगार की सरस सरित त्रैताप-नसावनि।
क्रूर कुपथगामिनि की पातक-पंक बहावनि ॥
असित ओप असि दुख दरिद्र दल गंजनहारी।
हरि भक्तन पांडव लज्जा द्रौपदि की सारी ॥
अखिल लोक नायक प्रमोददायक पटरानी।
प्रिय प्रीतम के रुचिर रंग रांची सुख सानी ॥
ब्रजरहस्य के परम तत्व की जो कछु पूँजी।
इक वाही की कृपा मात्र ताकी कल कूँजी ॥

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' बी. ए. बी. एल.

[जन्म संवत् १९२५—मृत्यु संवत् १९७२]

पूर्ण जी के अकाल कालकवलित होजाने से हिन्दी काव्य साहित्य आपकी कृतियों से वस्तुतः वंचित ही रहा तो भी थोड़े ही समय में आपकी प्रतिभा ने काफ़ी आकर्षण प्राप्त कर लिया था। चन्द्रकला-भानुकुमार नाटक और 'धाराधर-धावन' तथा कितनी ही फुटकर रचनायें आपकी बहुत लोक-प्रचलित हैं। आपकी रचनाओं का सङ्कलन 'पूर्ण-संग्रह' नाम से प्रकाशित हो चुका है। 'रसिकवाटिका' नाम की मासिक पत्रिका तथा "धर्म-कुसुमाकर" नाम का मासिक पत्र आपने निकाला था। आप धर्मभीरु एवं कारुणिक कवि थे। देश-भक्ति की संजीवनी भी इनकी कृतियों में मिलती है। आप प्रकृत कवि थे तथा आपकी प्रतिभा एवं प्रक्रिया आपके 'पूर्ण' नाम को सार्थक करती है।

❀ ❀ ❀

सरस्वती

(१)

कुन्द घनसार चन्द्र हू तें अङ्ग शोभावन्त,
भूखन अमन्द त्यों विद्युत हैं दामिनी।
कञ्जमुखी कञ्जनैनी वीना करकञ्ज धारे,
सोहै कञ्जआसन सुरी हैं अनुगामिनी॥
भाव रस छन्दन की कविता निबन्धन की,
'पूरन' प्रसिद्ध सिद्ध सिद्धिन की स्वामिनी।
जै-जै मात बानी विश्वगनी बरदानी देवि,
आनँद-प्रदानी कमलासन की भामिनी॥

(२)

अली राजहंसन की बारी हँसबाहन पै,
चारुता पै चाँदनी की आभा चारु वारी है।
सेत कन्ज आसन पै कैरव सुपुञ्ज वारे,
नैनन पै खञ्जन की वारी छवि सारी है॥
मंजुल पगन वारी छटा अरबिन्दन की,
वीना पै मलिन्दन की वारी गुञ्ज प्यारी है।
मुख पै अमन्द चन्द 'पूरन' की वारी प्रभा,
शारदीय शोभा शारदा पै वारि डारी है॥

(३)

हरिजस-पावस में कहरै सिखी-सी तुही,
बेद-कुसुमाकर में कूजती पिकी-सी है।
तू ही सुखदानी रम-धर्म की कहानी माहिं,
कर्म-वीथिका में बानी-दीपिका-सी दीसी है॥

नीति छीर-धारा में उदारा नवनीति तू ही,
मेधा-मेघमाला में लसति दामिनी-सी है।
ज्ञावन की प्रतिमा, सुमति कविनाथन की,
गाथन की सिद्धि तेरे हाथन बिकी-सी है॥

(४)

'पूरन' समूह सुर सन्तन प्रतापिन को,
तेरे पद पंकज के प्रेम में पगो करै।
पाय भरपूर ज्ञान, त्यागि भय भाग भरो,
भारती भवन्ती भक्त भव तें भगो करै॥
लगन लगाय नीके अपने स्वरूप माहिं,
दिन-दिन माया तें बिरागी बिलगो करै।
तेरी ही कृपा सों जग जागरूक प्रतिभा की,
जगमग जोति उर जोगी के जगो करै॥

(५)

बाहन अनूप है विवेक को स्वरूप ऐसो,
सुखद बिसद जो जगत में बखानो है।
सेवक अनूप है रमेस सुरभूप ऐसे
बन्दना को मुदित विधान जिन ठानो है॥
ज्ञान की अनूप राजधानी है प्रकाश रूप
जामें बसिबे को मुनि वृन्द ललचानो है।
दान में लुटाये होत 'पूरन' अधिक ऐसो
विद्या को अनूप विश्वरानी को खजानो है॥

वामन

(१)

अदेवन की उर आनि अनीति,
निबाहन को सुर पालन रीति,
सुधारन को जन को अधिकार,
धन्यो हरि वामन को अवतार ॥

(२)

बड़े जन को नहिं मांगन जोग;
फबैं छल-साधन में लघु लोग।
रमापति विष्णु असंग अनूप;
धन्यो एहि कारन वामन रूप ॥

(३)

भले सजि साज, चले मख-भूमि;
पगौ पग लेति धरातल चूमि।
प्रसून घने बरसैं सुर गोत;
दिवाकर तेज निछावर होत ॥

(४)

जबै पहुँचे बलि भूपति द्वार;
गये सब मोह रहे मन वार।
कह्यो कोउ चंद, कह्यो कोऊ भान;
कोऊ समझ्यो तप मूरतिमान ॥

(५)

गयो बलि भूपति पै दरबान;
कियो द्विज को इमि रूप बखान—

सुनो विनती मम दानव-भूप;
खड़ो दर पै बटु एक अनूप॥

(६)

बिराजत है तनु पै मृग-छाल;
छटा-जुत छाजत छत्र विशाल।
कमंडलु दंड लसैं कर माहिं;
महादुति की उपमा जग नाहिं॥

(७)

बढ़े दृग हैं अरविंद समान;
प्रलंब भुजा गज-सुंड-प्रमान।
बड़ो तपवान बड़ो गुनगेह;
अहै पर बावन अंगुल देह॥

(८)

भयी रुचि दर्शन की अधिकाय;
कह्यो बलि सादर लेहु बुलाय।
कियो तब वामन यज्ञ-प्रवेश;
हुतासन जंगम सो वर वेश॥

(९)

अलोल विलोचन सों बलि भूप;
बिलोकि छक्यो वह मोहन रूप।
फल्यो निज पुण्य हिये इमि जान;
अनेक विधान कियो सनमान॥

(१०)

भरे अनुराग कहे पुनि बैन—
गिरा मम भाग सरहि सकै न।

कृतारथ मोहिं करो द्विजराज;
बनै कछु याचन सो मख-काज ॥

(११)

रमावर चारु-चरित्र-प्रवीन;
धरा तब मांगि लई पग तीन ॥
विचार कछू कछु जोग मिलाय;
"अरे बलि"—शुक्र कह्यो घबराय ॥

(१२)

"अरे मतिमान! कहां तव ध्यान;
न दे बटु को अवनी तल दान।
लगे लघु देखन में यह व्यक्ति;
विशाल पराक्रम है अरु शक्ति ॥

१३)

अरे जनि भूल करै मम भूप;
अहै यह विष्णु बनो लघु रूप।
अरे पग तीन धरा मत जान;
बुरे परिणाम भरो यह दान ॥"

(१४)

बली बलियों गुरु सों कर जोरि;
कह्यो नहिं सत्य सकौं प्रण तोरि।
धरा, धन, प्राण—चहै सब जाहिं;
मही करि दान कहूँ किमि नाहि ॥

(१५)

कियो तनु दीरघ विष्णु प्रताप;
लिये पग द्वै बसुधा नभ नाप।

तृतीय पुजावन को नृपराय,
दियो मुद सों निज अंग नपाय ॥

(१६)

सुभक्त-प्रयत्न प्रसन्न रमेश;
निवास बताय रसातल-देश।
कह्यो–"सुनु दानि-शिरोमणि, तोहि"
मिलै वर 'पूरन' जो रुचि होहि ॥

(१७)

कह्यो बलि भूप बढ़ाय हुलास;
"यही वर मांगत हों सुखरास।
प्रभात प्रभो ! मम धामि पधारि;
सदा निज दर्शन देहु मुरारि ॥"

(१८)

छल्यो बलि को नहिं भूतल नाप;
छले बलि के कर सों प्रभु आप।
सदा जय 'पूरन' विश्व मन्हेद्र;
सदा जय भक्त भविष्य-सुरेन्द्र ॥

—०—

पं० रामचरित उपाध्याय

[जन्म सम्वत् १६२६]

पं० रामचरित उपाध्याय जी वस्तुतः खड़ी बोली के प्रतिनिधि कवि हैं। पुराने ढंग के संस्कृतज्ञ एवं पण्डित हैं। इसी कारण कदाचित् वर्तमान काव्य-प्रगति से आपकी कविता प्रभावित नहीं होपाई। आप विशुद्ध खड़ी बोली में कविता लिखते हैं। कुछ गद्य पुस्तकें भी लिखी हैं। लेकिन आपका 'रामचरित-चिन्तामणि' नामक महाकाव्य ही आपकी कृतियों में सब से अधिक लोकप्रिय है। आपकी रचनाओं में कलात्मक वृत्ति की अपेक्षा उपदेशात्मक वृत्ति अधिक अंशों में विद्यमान है।

❀ ❀ ❀

मंदोदरी और रावण

मंदोदरी—

बुध वही, गुण-सागर है वही,
सकल लोक-जनेश्वर है वही ।
कुछ प्रियऽप्रिय है जिसको नहीं,
विरति में रति तुल्य है ॥
पर रमा रमणी विष तुल्य है,
हठ नहीं करिये प्रिय ! मानिये ।
तनिक ताप उसे लगता नहीं,
वृजिनका जिनका शुभ कर्म है ॥
नय-परायणता प्रिय है जिसे
अरुचि हो पर-पीड़न से जिसे ।
रमण ! हो फिर क्यों उसके नहीं
अहित भी हित भीतर से सदा ॥
निज वधू जनमें रमिये प्रभो,
सुर-सुतोपम है वह जानकी ।
न उसकी समता फबती तुम्हें,
असुर हो, सुर हो सकते नहीं ॥
रसिक हो निगमागम के सही.
प्रिय ! सुरासुर से कर लीजिये ।
पर नहीं तुम में कुछ भी हुई.
सुजनता जन-ताप-निवारिणी ॥
स्वमहिषी यदि पाकर वे लड़ें,

तब नहीं हटिये रण से कभी।
वुध नहीं पहले अरि मारते,
लगुड़ से, गुड़ से यदि कार्य हो ॥
प्रिय! अभी कुछ भी बिगड़ा नहीं,
स्वमन को अपने वश कीजिये।
अहह! क्यों मनुजा-छवि जाल में—
शकुल के कुल के सम हो फंसे॥
निज हिताहित को समझे न जो,
यदि न हो जिसमें कुछ भी दया।
फिर दशानन! क्यों उसकी नहीं,
मुखरता खर ताप न मानिये॥
भजन ही करिये अब ईश का,
अवशताअति तापकारी सदा।
यदि बने निज राज्य सहर्ष हो,
तनय को नय कोविद! दीजिये॥
जनकजा गत चित्त न हो प्रभो!
विवश हो वश होकर काल के।
निकट ही अब अन्तिम आपका—
दिवस है, वश है चलता नहीं॥

रावण—

कुछ नहीं कहिये समझे बिना,
यह सनातन की शुभनीति है।
इसलिये स्थिर होकर के प्रिये!
पिशुनता सुन तापस की जरा॥

अहह ! नाक बिना भगिनी हुई,
प्रियतमे ! जिसकी करतूत से।
विनय हो करती उसके लिये;
न रसना रस-नाश करी करो !
रहित हा ! खरदूषण से किया,
मयसुते ! मुझको जिस राम ने।
फिर चखें उसकी अब क्यों नहीं—
तरस के, रस के हम विज्ञ हैं॥
प्रकट में वह साधु समान है,
कुटिलता पर है उसमें भरी।
सुजन है वह क्यों जिसकी प्रिये,
द्विरद के रद के सम नीति है॥
समर है रिपु से करना नहीं,
कब भला हम हैं सुनते इसे।
जगत में भट की भटमानिता—
अचल है, चल है अचलादि भी॥
जय यथा सुखदायक शूर को,
मरण भी रण में शुभ है उसे।
इसलिये मम निर्भय हो सदा,
विजन में जन में मन मग्न है॥
यम अजादिक भी मम सामने,
रुक नहीं सकते रण में कभी।
तदपि राम ! भिड़ा मुझ से अहो,
न बड़वा बड़वानल को तरे॥
बल नहीं अबले ! मम जानती,

भय तभी तुझ को नर से हुआ।
हम विपक्ष निशा-तम के लिये,
द्युमणि हैं, मणि हैं निज वंश के॥
हर घड़ी मन में मम कामना,
बस यही अब है सुन तू प्रिये।
कब करूं रणताण्डव शत्रु के—
निकर में, कर में करवाल ले॥
तुम विहार करो गत चिन्त हो,
सुमदिरा मदिराक्षि, पिया करो।
कर नहीं सकता मम इन्द्र भी—
प्रकृति की कृति की प्रतिकूलता॥

('रामचरित-चिन्तामणि' से)

———

सैयद अमीरअली 'मीर'

[जन्म सम्वत् १९३०]

'मीर' जी एक तरह से आधुनिक 'रसखान' हैं। साधारण शिक्षा-दीक्षा प्राप्त होने पर भी इनमें काव्यकला का परिष्करण अच्छा हुआ है 'रहीम' और 'रसखान' की तरह इन्होंने भी हिन्दू-संस्कृति को ही अपनी कविता का आधार माना है। गोस्वामी तुलसीदास की रामायण पर इनका विशेष अनुराग है। अपनी योग्यता के कारण आप 'काव्यरसाल' 'साहित्यरत्न' आदि उपाधियों से विभूषित हैं। बूढ़े का ब्याह, सदाचारी बालक, 'नीतिदर्पण की भाषा टीका' आदि पुस्तकें लिखी हैं। ब्रजभाषा की अपेक्षा खड़ी बोली में ही इन्होंने अधिकतर लिखा है और लिखा यद्यपि कम है, तो भी जितना लिखा है, अच्छा लिखा है।

❀ ❀ ❀

दशहरा

आ गया प्यारा दशहरा, छा गया उत्साह बल।
मातृ-पूजा शक्ति-पूजा, वीर-पूजा है विमल॥
हिन्द में यह हिन्दुओं का विजय-उत्सव है ललाम।
शरद की इस शुभ्र ऋतु में खड्ग-पूजा धाम-धाम॥
दिखने लगे खञ्जन यहां, रहने लगे चकवे अशोक।
चल पड़े योगी यती मग की मिटी सब रोक टोक॥
भरने लगे बाजार हैं, खुलने लगे व्यापार द्वार।
सजने लगे सेना नृपति, बजने लगे बाजे अपार॥
यह दशहरा क्षत्रियों का प्राण-जीवन-पर्व है।
हिन्द के इतिहास में इस पर्व का अति गर्व है॥
वीर पुरुषों को यही सञ्जीवनी का काम दे।
जीत दे, फिर कीर्ति दे, फिर मान दे, धन-धाम दे॥
थी विजय-दशमी यही जब रामने दल साज कर।
गिरि प्रवर्षण से चढ़ाई की थी लङ्का-राज पर॥
मार रावण को वहां उद्धार सीता का किया।
और लंका का विभीषण को तिलक था दे दिया॥
उस समय से इस दशहरे का बड़ा सम्मान है।
मान गुण का यह प्रवर्तक क्षत्रियों का प्राण है॥
आज करते हैं विजय की कामना सब वीरवर।
जांचते हैं दृष्टि कर गज अश्व दल हथियार पर॥
श्रेय विजया से भरे इतिहास के बहु पत्र हैं।
आज भी प्रतिबिम्ब उसका देखते सर्वत्र हैं॥

जो सबक लेना हमें उससे उचित लेते नहीं।
स्वार्थ पशु-बल त्याग की तलवार से देते नहीं॥
इन्द्रियों की वासना ही है असुर शंका नहीं।
ज्ञान शर से जीतते हैं लोभ की लंका नहीं॥
हन्त जो कुविचार-रावण है उसे तजते नहीं।
क्या कहें सुविचार श्रीवर राम को भजते नहीं॥
नाश कर कुविचार का सद्बुद्धि सीता लाइए।
नृप विभीषण की तरह सन्तोष को अपनाइए॥
शान्त हो प्यारी अवध, फिर राज्य उसका कीजिए।
'मीर' विजया की विजय का इस तरह यश लीजिए॥

—•—

पं० कामताप्रसाद 'गुरु'

[जन्म सम्वत १९३२]

आप सुप्रसिद्ध व्याकरणाचार्य हैं। आपकी लिखी हुई हिन्दुस्तानी शिष्टाचार, सुदर्शन (नाटक), अन्त्याक्षरी, पद्यपुष्पावली, पार्वती और यशोदा आदि कई पुस्तकें प्रसिद्ध हैं; किन्तु 'हिन्दी-व्याकरण' सब से अधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके कई संक्षिप्त संस्करण भी निकल चुके हैं। व्याकरण विशेषज्ञ होने के कारण ही कदाचित् आपकी पद्य रचनायें विशेष परिमार्जित एवं परिष्कृत होती हैं। उड़िया, मराठी, उर्दू, फारसी और अंगरेजी के भी विद्वान् हैं। इन दिनों गवर्नमेंट पेंशनर हैं और स्थायी रूप से जबलपुर में रहते हैं।

❀ ❀ ❀

सहगमन

छूटने पाया न कङ्कण ब्याह का।

आ गया आदेश विक्रमशाह का॥

शीघ्र ही जयसिंह जाओ युद्ध पर।

देश-हित के हेतु सर्वस त्याग कर॥

पास पत्नी के गये ठाकुर तभी।

और उसको पत्र दे बोले अभी॥

शीघ्र ही फिर भेंट कर उसको हिये।

हट गये झटपट निकलने के लिये॥

देवकी ने धीर अपना खो दिया।

प्राणपति से झट लिपट कर रो दिया॥

पर अचानक भाव उसका फिर गया।

मोह का परदा हृदय से गिर गया॥

प्रेम से उसने सुना पति का कहा।

खेद पति के चित्त का जाता रहा॥

किन्तु जब आई बिछुड़ने की घड़ी।

गाज सी दोनों मनों पर आ पड़ी॥

मोह का संकेत फिर कर अनसुना।

धर्म का कर्तव्य दोनों ने गुना॥

देवकी ने शीघ्र रणकङ्कण दिया।

बांध उसको हाथ में पति ने लिया॥

चिह्न दोनों साथ ले उत्साह में।

जा रहे जयसिंह हैं रन-राह में॥

सुध प्रिया की मार्ग में आती रही।
किन्तु रन-मैदान में जाती रही॥
युद्ध में तो और ही कुछ ध्यान है।
पूर्ण हिय में देश का अभिमान है॥
प्राण क्या हैं देश के हित के लिये।
देश खोकर जो जिये तो क्या जिये॥
मग्न हैं जयसिंह रन के चाव में।
ला रहे हैं शत्रु को निज दाव में॥
घाटियां, मैदान, पर्वत, खाइयां।
सब कहीं हैं शूरमा औ दाइयां॥
रात-दिन है अग्नि-वर्षा हो रही।
रात-दिन है पूर्ण लोथों से मही॥
व्योम, जल, थल सब कहीं है रन मचा।
युद्ध के फल से नहीं कोई बचा॥
एक दिन जयसिंह धावा मार कर।
दल सहित जब आरहे थे केन्द्र पर॥
एक दाई घायलों के बीच में।
दिख पड़ी सोती रुधिर की कीच में॥
ध्यान से जयसिंह ने उसको लखा।
और फिर उसके हृदय पर कर रखा॥
हो विकल उसको जगाने वे लगे।
मर चुकी थी वह, भला अब क्यों जगे॥
घायलों की वीर-सेवा में लगी।
और फिर प्रिय ध्यान में पति के पगी॥
गोलियों से शत्रु के भागी न थी।

चोट घातक झेल वह जागी न थी ॥
शोक में जयसिंह कुछ बोले नहीं।
थे जहां बैठे, रहे बैठे, वहीं ॥
दुःख में अब घोर चिन्ता छा गई।
प्रियतमा कैसे यहाँ कब आ गई ॥
आ गये उस काल सेनापति वहाँ।
वीर नारी की लखी शुभ गति वहाँ ॥
वीर होकर भी हुई उनको व्यथा।
आदि से कहने लगे उसकी कथा ॥
दाइयाँ कुछ आपके दल के लिये।
कुछ समय पहिले मुझे थीं चाहिये ॥
की गई इसकी प्रकाशित सूचना।
देवकी ने शीघ्र भेजी प्रार्थना ॥
दाइयों में इस तरह भरती हुई।
अन्त लों निज काज यह करती हुई ॥
शत्रु के अन्याय से मारी गयी।
पायगा फल दुष्टता का निर्दयी ॥
हाल सुन जयसिंह का दुख बढ़ गया।
शत्रु पर अब क्रोध उनको चढ़ गया ॥
सौंप कर मृत देह सेनापति-निकट।
प्रण किया सब से उन्होंने यह विकट ॥
भस्म जब मैं कर चुकूंगा रिपु-नगर।
तब पड़ेगी अग्नि इस प्रिय देह पर ॥
और जो मैं मरूं रिपु हाथ में।
फूंकना मुझको प्रिया के साथ में ॥

दूसरे दिन व्योम से जलता हुआ।
पर कटे खगराज-सा चलता हुआ॥
केन्द्र से कुछ दूर रव करके बड़ा।
युद्ध का नभ-यान आकर गिर पड़ा॥
नष्ट पुर को यान ने था कर लिया।
मार्ग रक्षित केन्द्र का था धर लिया॥
किन्तु रिपु का क्रुद्ध गोला चल उठा।
और उसकी आग से यह जल उठा॥
साथ ही प्रेमी युगल बुझकर जले।
और दोनों साथ ही जलकर चले॥
एक कङ्कण से बँधे थे वे यहां।
दूसरे से जा बंधे दोनों वहां॥
पर दिया था बुझ चुका यह आग से।
या बुझे उस दीप के अनुराग से॥
सैनिकों ने खींच इसमें से लिया।
उस पुरुष को देश का जो था दिया।
प्रेम-बन्धन जन्म लय का सार है॥
प्रेम-बन्धन देश का उद्धार है॥
प्रेम-बन्धन देवकी जयसिंह का।
तोप से भी रिपु न खण्डित कर सका॥

पं० गयाप्रसाद शुक्ल

[जन्म सम्वत्–१६४०]

आप 'सनेही' और 'त्रिशूल' उपनाम से कविता करते हैं और व्रजभाषा, खड़ी बोली तथा उर्दू तीनों ही में लिखते हैं। आपकी कविता की विशेषता है भाषा की सादगी में। जैसे 'सादा जीवन और उच्च विचार का सामञ्जस्य है, वैसे ही इनकी भाषा की सरलता और विचार प्रौढ़ता का है। 'प्रताप' (कानपुर) के कविता स्तम्भ का सम्पादन आप ही पहले करते थे। इन दिनों 'सुकवि' नाम का कविता-सम्बंधी मासिक पत्र निकालते हैं। कवि-सम्मेलनों को आपके द्वारा बहुत प्रोत्साहन मिला है और प्राय: आप उनमें सभापति बनाये जाते हैं। आप राष्ट्रीय कवि हैं। आपकी कुछ कविताओं का संग्रह 'त्रिशूल तरङ्ग' नाम से प्रकाशित हुआ है।

❀ ❀ ❀

भक्त की अभिलाषा

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूं,
तू है महासागर अगम मैं एक धारा क्षुद्र हूं।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूंद समान हूं,
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूं ॥१॥
तू है सुखद ऋतुराज तो मैं एक छोटा फूल हूँ,
तू है अगर दक्षिण पवन तो मैं कुसुम की धूल हूं।
तू है सरोवर अमल तो मैं एक उसका मीन हूं;
तू है पिता तो पुत्र मैं तव अङ्क में आसीन हूं ॥२॥
तू अगर सर्वाधार है तो एक मैं आधेय हूं,
आश्रय मुझे है एक तेरा, श्रेय या आश्रेय हूं।
तू है अगर सर्वेश तो मैं एक तेरा दास हूं,
तुझ को नहीं मैं भूलता हूं, दूर हूं या पास हूं ॥३॥
तू है पतितपावन प्रकट, तो मैं पतित मशहूर हूं,
छल से तुझे यदि है घृणा, तो मैं कपट से दूर हूं।
है भक्ति की यदि भूख तुझको, तो मुझे तव भक्ति है,
अति प्रेम है तेरे पदों में, प्रेम है आसक्ति है ॥४॥
तू है दया का सिन्धु, तो मैं भी दया का पात्र हूं,
करुणेश तू है, चाहता मैं नाथ करुणा-पात्र हूं,
तू दीनबन्धु प्रसिद्ध है, मैं दीन से भी दीन हूं,
तू नाथ! नाथ अनाथ का, असहाय मैं प्रभु हीन हूं ॥५॥
तव चरण अशरण शरण हैं, मुझको शरण की चाह है,
तू शीतकर है दग्ध को, मेरे हृदय में दाह है।

तू है शरद राकाशशी, मम चित्त चारु चकोर है,
तव ओर तजकर देखता वह और की कब ओर है॥६॥
हृदयेश ! अब तेरे लिए है हृदय व्याकुल हो रहा,
आ, आ इधर आ शीघ्र आ, यह शोर-यह गुल हो रहा।
यह चित्त चातक है तृषित, कर शान्त करुणावारि से
घनश्याम तेरी रट लगी आठों पहर है अब इसे ॥७॥
तू जानता मन की दशा, रखता न तुझसे बीच हूं,
जो कुछ कि हूं तेरा किया हूं उच्च हूं या नीच हूं।
अपना मुझे अपना समझ तपना न अब मुझको पड़े,
तजकर तुझे यह दास जाकर द्वार अब किसके अड़े॥८॥
तू है दिवाकर तो कमल मैं, जलद तू मैं मोर हूं,
सब भावनाएं छोड़कर अब कर रहा यह शोर हूं।
मुझमें समा जा इस तरह तन प्राण का जो तौर है,
जिसमें न फिर कोई कहे मैं और हूं, तू और है॥९॥

सत्य

(१)

सत्य सृष्टि का सार सत्य निर्बल का बल है;
सत्य सत्य है सत्य नित्य है अचल अटल है।
जीवन सर में सरस मित्रवर यही कमल है;
मोद मधुर मकरन्द सुयश सौरभ निर्मल है॥
मन मलिन्द मुनि वृन्द के मचल-मचल इस पर गये।
प्राण गये तो इसी पर न्योछावर होकर गये॥

(२)

अटल सत्य का प्रेम भरे जिस नरके मन में;
पाये जो आनन्द आत्मबल के दर्शन में।
पशुबल समझे तुच्छ खड्ग भूषण गर्दन में;
सनके भी जो नहीं गोलियों की सन-सन में।
जीवन में बस प्रेम ही जिसका प्राणाधार हो।
सत्य गले का हार हो इतना उस पर प्यार हो॥

(३)

तुम होगे सुकरात ज़हर के प्याले होंगे;
हाथों में हथकड़ी पदों में छाले होंगे।
ईसा से तुम और जान के लाले होंगे,
होगे तुम निश्चेष्ट डस रहे काले होंगे।
होना मत तुम व्याकुल कहीं इस भवजनित विपाद से।
अपने आग्रह पर अटल रहना बस प्रह्लाद से॥

(४)

होंगे शीतल तुम्हें आग के भी अङ्गारे;
मर न सकोगे कभी मौत के भी तुम मारे।
क्या ग़म है, गर छूट जायंगे साथी सारे;
बहलावेंगे चित्त चन्द्र चमकीले तारे।
दुख में भी सुख शान्ति का नव अनुभव हो जायगा।
प्रेम-सलिल से द्वेष का सारा मल धो जायगा॥

(५)

धीरज देगी तुम्हें मित्रवर मीराबाई;
प्रेम-पयोनिधि-थाह भक्ति से जिसने पाई।

रही सत्य पर डटी प्रेम से बाज न आई;
कृष्ण-रङ्ग में रंगी कीर्त्ति उज्ज्वल फैलाई।
आई भी उसकी टली वह विष प्याला पी गई।
मरी उसी की गोद में जिसको पाकर जी गई॥

(६)

सत्यरूप हे नाथ ! तुम्हारी शरण रहूंगा;
जो व्रत है ले लिया, लिये आमरण रहूंगा।
ग्रहण किये मैं सदा आपके चरण रहूंगा;
भीति किसी से और न हे भयहरण रहूंगा।
पहली मंजिल मौत है प्रेम-पन्थ है दूर का।
सुनता हूं मत था यही सूली पर मंसूर का॥

—०—

पं० सत्यनारायण 'कविरत्न'

[जन्म सम्वत् १६४१–मृत्यु सम्वत् १६७५]

कवि-समाज में आप प्राय: 'कविरत्न' नाम से ही परिचित हैं, यही आपकी प्रतिभा का बड़ा भारी प्रमाण है। हिन्दी के दुर्भाग्य से आप अकाल काल-कवलित हो गये। लिखते तो आप खड़ी बोली में भी थे लेकिन वस्तुत: कवि ब्रजभाषा के थे। इनकी छोटी मोटी पुस्तकें कई एक निकली हैं; लेकिन यशस्वी आपको 'मालती माधव' तथा 'उत्तर राम-चरित' नाटकों के अनुवाद ने बनाया है। वस्तुत: इनकी काव्यप्रतिभा का विकास नहीं हो पाया। इनका गार्हस्थ्य जीवन दु:खमय रहा। कदाचित् इसी कारण करुणा-रस को इनकी कविता में प्रधानता मिली है। आप अत्यन्त मधुर एवं प्रकृत कवि थे। आपकी कुछ कविताओं के संग्रह भी निकले हैं।

❀ ❀ ❀

पद

१—अब न सतावौ !

करुणाधन इन नयननि सों द्वै, बुंदियां तौ टपकावौ ॥
सारे जग सों अधिक कियो का, ऐसो हमने पाप।
नित नव दई निर्दई बनि जो, देत हमें सन्ताप ॥
सांची तुमहिं सुनावत जो हम, चौंकत सकल समाज।
अपनी जांघ उघारे उघरति, बस अपनी ही लाज ॥
तुम आछे हम बुरे सही बस, हमरो ही अपराध।
होरी-सी जातीय प्रेम की, फूंकि न धूरि उड़ावौ।
जुग कर जोरि यही 'सत' मांगत, अलग न आर लगावौ ॥

२—बस अब नहिं जाति सही।

विपुल वेदना बिविध भांति जो, तन मन व्यापि रही ॥
कबलौं सहैं अवधि सहिवे की, कुछ तौ निश्चित कीजै।
दीनबन्धु यह दीन-दशा लखि, क्यों नहिं हृदय पसीजे ॥
बारन दुख-टारन तारन में, प्रभु तुम बार न लाये।
फिर क्यों करुना करत स्वजन पै, करुनानिधि अलसाये ॥
यदि जो कर्म-यातना भोगत, तुम्हरे हू अनुगामी।
तौ करि कृपा बतायो चहियतु, तुम काहे के स्वामी ॥
अथवा बिरद-बानि अपनी कछु, क तुमने तजि दीनी।
या कारन हम सब अनाथ की, नाथ न जो सुधि लीनी ॥
वेद बदत गावत पुरान सब, तुम त्रय ताप नसावत।
सरनागत की पीर तनकहू, तुम्हैं तीर सम लागत ॥
हमसे सरनापन्न दुखी को, जाने क्यों बिसरायो।
सरनागत-वत्सल 'सत' योंही, कोरो नाम धरायो ॥

——०——

पं० रूपनारायण पांडेय

[जन्म संवत् १९४१]

पांडेय जी ब्रज भाषा और खड़ी बोली के लब्ध-प्रतिष्ठ कवि हैं। लेकिन कवि की अपेक्षा आप अनुवादक और संपादक के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। बँगला के कितने ही नाटकों और उपन्यासों का अनुवाद हिंदी में किया है। कान्यकुब्ज, माधुरी तथा सुधा के वर्षों संपादक रह चुके हैं। इन्डियन प्रेस की सुप्रसिद्ध 'हिंदी महाभारत' के कई भागों का आपने अनुवाद एवं संपादन किया है। कितनी ही पुस्तकों की टीका की है, तथा कितनी ही प्राचीन पुस्तकों का संशोधन। आपकी कविताओं का संग्रह 'पराग' नाम से प्रकाशित हुआ है। भारत-धर्म-महामंडल ने आपको 'कविरत्न' की उपाधि से अलंकृत किया है। आप 'कमलाकर' उप-नाम से कविता लिखा करते हैं। सब मिलाकर लगभग सौ-सवासौ पुस्तकें आपने लिखी हैं।

❀ ❀ ❀

वन-विहंगम

(१)

वन बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत कपोती कहीं।
दिन-रात न छोड़ता एक को दूसरा, ऐसे हिले मिले दोनों वहीं।
बढ़ने लगा नित्य नया-नया नेह, नई-नई कामना होती रहीं।
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं।

(२)

रहता था कबूतर मुग्ध सदा, अनुराग के राग में मस्त हुआ।
करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ।
जब जो कुछ चाहा कबूतरी ने उतना वह वैसे समस्त हुआ।
इस भांति परस्पर पक्षियों में भी प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ।

(३)

सुविशाल वनों में उड़े फिरते, अवलोकते प्राकृत चित्र-छटा।
कहीं शस्य से श्यामल खेत खड़े, जिन्हें देख घटा का भी मान घटा।
कहीं कोसों उजाड़ में भाड़ पड़े, कहीं आड़ में कोई पहाड़ सटा।
कहीं कुंज-लता के वितान तने, घने फूलों का सौरभ था सिमटा।

(४)

झरने-झरने की कहीं झनकार, फुहार का हार विचित्र ही था।
हरियाली निराली, न माली लगा, तब भी सब ढंग पवित्र ही था।
ऋषियों का तपोवन था, सुरभी का जहां पर सिंह भी मित्र ही था।
बस जानलो, सात्त्विक सुंदरता-सुख-संयुत शान्ति का चित्र ही था।

(५)

कहीं झील किनारे बड़े-बड़े ग्राम गृहस्थ-निवास बने हुए थे।
खपरैलों में कद्दू करैलों की बेल के खूब तनाव तने हुए थे।
जल शीतल, अन्न जहां पर पाकर पत्ती घरों में घने हुए थे।
सब ओर स्वदेश, स्वजाति-समाज-भलाई के ठान ठने हुए थे।

(६)

इस भांति विलोकते लोक की लीला प्रसन्न वे पत्ती फिरे घर को।
उन्हें देख के दूर ही से मुख खोल के बच्चे चले चट बाहर को।
दुलराने खिलाने-पिलाने से था अवकाश उन्हें न घड़ी भर को।
कुछ ध्यान ही था न कबूतर को कहीं काल चढ़ा रहा है शर को।

(७)

दिन एक बड़ा ही मनोहर था, छवि छाई वसन्त की कानन में।
सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी जड़, चेतन के तन में मन में।
निकले थे कपोत कपोती कहीं, पड़े झुण्ड में घूम रहे बन में।
पहुँचा यहां घोंसले पास शिकारी शिकार की ताक में निर्जन में।

(८)

उस निर्दय ने उसी पेड़ के पास बिछा दिया जाल को कौशल से।
वहां देख के अन्न के दाने पड़े चले बच्चे, अभिज्ञ न थे छल से।
नहीं जानते थे कि यहीं पर है कहीं दुष्ट भिड़ा पड़ा भूतल से।
बस फांस के बांस के बन्धन में कर देगा हलाल हमें बल से।

(९)

जब बच्चे फँसे उस जाल में आ तब वे घबरा उठे बन्धन में।
इतने में कबूतरी आई वहां दशा देख के व्याकुल हो मन में।
कहने लगी हाय, हुआ यह क्या ! सुत मेरे हलाल हुए बन में।
अब जाल में जाके मिलूँ इनसे, सुख ही क्या रहा इस जीवन में।

(१०)

उस जाल में जाके बहेलिये के, ममता से कबूतरी आप गिरी।
इतने में कपोत भी आया वहां उस घोंसले में थी विपत्ति निरी।
लखते ही अँधेरा-सा आगे हुआ घटना की घटा वह घोर घटी।
नयनों से अचानक बूँद गिरे, चेहरे पर शोक की स्याही फिरी।

(११)

तब दीन कपोत बड़े दुख से कहने लगा—हा, अति कष्ट हुआ।
निबलों ही को दैव भी मारता है यह, प्रवाद यहां पर स्पष्ट हुआ।
सब सूना किया, चली छोड़ प्रिया, सब ही बिधि जीवन नष्ट हुआ।
इस भांति अभागा अतृप्त ही मैं सुख-भोग के स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ।

(१२)

कल कूजन केलि कलोल में मस्त हो बच्चे मुझे जो सुखी करते।
जब देखते दूर से आते मुझे किलकारियां मोद से जो भरते।
समहाय के धाय के, आय के पास, उठाय के पंख नहीं टरते।
वही हाय, हुये असहाय, अहो! इस नीच के हाथ से हैं मरते!

(१३)

गृहलक्ष्मी नहीं, जो जगाये रहा करती थी सदा सुख कल्पना को।
शिशु भी तो नहीं, जो उन्हीं के लिये सहता इस दारुण वेदना को।
वह सामने ही परिवार पड़ा-पड़ा भोग रहा यम-यातना को।
अब मैं ही वृथा इस जीवन को रख कैसे सहूँगा विडम्बना को!

(१४)

यहां सोचता था यों कपोत, वहां चिड़ीमार ने मार निशाना लिया;
गिर लोट गया धरती पर पक्षी, बहेलिये ने मनमाना किया।
पल में कुल का कुल काल कराल ने यों यमलोक को भेज दिया।
क्षणभंगुर जीवन की गति का यह देखो निदर्शन है बढ़िया!

(१५)

हर एक मनुष्य फँसा जो ममत्व में तत्त्व-महत्त्व को भूलता है।
उसके सिर पै खुला खड्ग सदा बँधा धागे में धार से झूलता है।
वह जाने बिना विधि की गति को अपनी ही गढ़न्त में फूलता है।
पर अन्त को ऐसे अचानक अंतक अस्त्र अवश्य ही हूलता है।

—०—

पं० रामचन्द्र शुक्ल

[जन्म सम्वत् १९४१]

आप प्राचीन ब्रजभाषा और अवधी-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान हैं तथा कवि एवं उच्चकोटि के समालोचक हैं। पाश्चात्य समालोचना शैली पर आपने हिन्दी के कवियों पर आलोचनाएं लिखी हैं जो पाण्डित्यपूर्ण हैं। तुलसी, सूर, जायसी आदि पर आपकी विशद समीक्षाएं बड़े तर्क-पूर्ण ढङ्ग से लिखी गयी हैं। आपके लिखने का ढङ्ग विशेषतः गम्भीर, मौलिक एवं व्यवस्थित रहता है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका का वर्षों सम्पादन किया। हिन्दी-शब्दसागर के सम्पादन में आपका विशेष भाग है। 'काव्य में रहस्यवाद' नामक पुस्तक में रहस्यवाद का अच्छा विवेचन आपने किया है। आपका 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' संयुक्त प्रान्त की हिन्दुस्तानी एकेडेमी द्वारा पुरस्कृत किया जा चुका है। पद्य की अपेक्षा आपने गद्य अधिक लिखा है लेकिन पद्य जितना भी लिखा है, बहुत अच्छा लिखा है। अंग्रेजी से कुछ अनुवाद भी किया है। इन दिनों आप हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रोफेसर हैं।

आमंत्रण

दृग के प्रतिरूप सरोज हमारे उन्हें जग ज्योति जगाती जहां;
जल बीच कलंब-करंबित कूल से दूर छटा छहराती जहां;
घन अंजनवर्ण खड़े, तृणजाल की झाईं पड़ी दरसाती जहां;
बिखरे बक के निखरे सित पंख बिलोक बकी बिक जाती जहां;
द्रुम-अंकित, दूब-भरी, जलखंड-जड़ी धरती छवि छाती जहां;
हर हीरक-हेम-मरक्त-प्रभा, ढल चंद्रकला है चढ़ाती जहां;
हँसती मृदु मूर्ति कलाधर की कुमुदों के कलाप खिलाती जहां;
घन-चित्रित अंबर अंक धरे सुषमा सरसी सरसाती जहां;
निधि खोल किसानों के धूल-सने श्रम का फल भूमि बिछाती जहां;
चुन के, कुछ चोंच चला करके चिड़िया निज भाग बँटाती जहां;
कगरों पर कांस की फैली हुई धवली अवली लहराती जहां;
मिल गोपों की टोली कछार के बीच है गाती औ गाय चराती जहां;
जननी धरणी निज अंक लिए बहु कीट पतंग खेलाती जहां;
ममता से भरी हरी बांह की छांह पसार के नीड़ बसाती जहां;
मृदु वाणी, मनोहर वर्ण अनेक लगा कर पंख उड़ाती जहां;
उजली कँकरीली तटी में धँसी तनु धार लटी बल खाती जहां;
दलराशि उठी खरे आतप में हिल चंचल चौंध मचाती जहां;
उस एक हरे रंग में हलकी गहरी लहरी पड़ जाती जहां;
कल कर्बुरता नभ की प्रतिबिम्बित खंजन में मन भाती जहां;
कविता वह! हाथ उठाए हुए चलिए कवि वृन्द बुलाती वहां;

—०—

बुद्ध की तपश्चर्य्या

या ठौर श्रीभगवान बसि काटत कराल निदाघ को।
जलधार-मय घनघोर पावस, कठिन जाड़ा माघ को।
सब लोक हित धरि मलिन बसन कषाय कोमल गात पै।
मांगे मिलति जो भीख पलटि पसारि पावत पात पै॥
व्रत नियम औ उपवास नाना करत धारत ध्यान हैं।
लावत अखंड समाधि आसन मारि मूर्त्ति समान हैं।
चढ़ि जानु ऊपर कूदि कबहूँ धाय जाति गिलाय हैं।
कन चुनत ढीठ कपोत कर ढिग कबहु कंठ हिलाय हैं॥
यों बिजन बन के वीच वसि प्रभु ध्यान धरि सोचत सदा।
प्रारब्ध की गति अटपटी औ मनुज की सब आपदा।
परिनाम जीवन के जतन को, कर्म की बढ़ती लड़ी।
आगम निगम सिद्धान्त सब औ पसुन की पीड़ा बड़ी॥
वा सून्य को सब भेद जहँ सों कढ़त सब दरसात हैं।
पुनि भेद वा तम को जहां सब अंत में चलि जात हैं।
या भांति दोउ अव्यक्त बिच यह व्यक्त जीवन ढरत है।
ज्यों मेघ तें लैं मेघ लौं नभ इन्द्रधनु लखि परत है॥
नीहार सों औ घाम सों जुरि जासु तन बनि जात है।
जो बिबिध रंग देखाय कै पुनि सून्य बीच बिलात है।
पुखराज, मरकत नीलमनि मानिक छटा छहराइ कै।
जो छीन छन-छन होत अन्त समात है कहुँ जाइ कै॥

['बुद्ध चरित' से]

पं० रामनरेश त्रिपाठी

[जन्म सम्वत् १६४१]

त्रिपाठी जी एक भावुक कवि एवं काव्य समीक्षक हैं। खड़ी बोली में ही इनकी रचनाएँ अधिकतर मिलती हैं। काव्यकला का विकास इनकी रचना में हुआ है। पथिक, मिलन, स्वप्न आदि कई खण्ड काव्य इनके प्रकाशित हो चुके हैं। प्राचीन तथा वर्तमान कवियों की रचनाओं का संग्रह 'कविता-कौमुदी' नाम से आपने किया है। इसके ४ भाग निकल चुके हैं। ग्राम्य गीतों का संग्रह भी किया है, तथा अन्य कितनी ही गद्य-पुस्तकें लिखी हैं। खड़ी बोली के अनन्य उपासक हैं। बाल-साहित्य एवं प्रौढ़-साहित्य, दोनों की रचना में आपका हाथ है।

❀ ❀ ❀

कर्म-संगर

(१)

यह संसार मनुष्य के लिये एक परीक्षा-स्थल है।
दुख है प्रश्न कठोर, देख कर होती बुद्धि विकल है।
किन्तु स्वात्मबल-विज्ञ सत्पुरुष ठीक पहुँच अटकल से,
हल करते हैं प्रश्न सहज में अविरल मेधा-बल से॥

(२)

यही लोक-कल्याण-कामना, यही लोक-सेवा है।
यही अमर करने वाले यश-सुरतरु का मेवा है।
जाओ पुत्र! जगत में जाओ, व्यर्थ न समय गँवाओ।
सदा लोक-कल्याण-निरत हो जीवन सफल बनाओ॥

(३)

दुख में बन्धु, वैद्य पीड़ा में साथी घोर विपद में।
दुसह दीनता में आश्रय, उत्साह निराशा-नद में।
भ्रम में ज्योति, सुमति सम्पति में, दृढ़ निश्चय संशय में।
छल में क्रान्ति, न्याय प्रभुता में अटल धैर्य बन भय में॥

(४)

जनता के विश्वास कर्म, मन, ध्यान, श्रवण, भाषण में।
वास करो, आदर्श बनो, विजयी हो जीवन-रण में।
अति अशान्त दुख-पूर्ण विशृंखल क्रांति-उपासक जग में।
रखना अपनी आत्मशक्ति पर दृढ़ निश्चय मग में॥

(५)

जग की विषम आंधियों के झोंके सम्मुख हो सहना।
स्थिर उद्देश्य-समान और विश्वास-सदृश दृढ़ रहना।
जाग्रत नित रहना उदारता-तुल्य असीम हृदय में।
अन्धकार में शान्त चन्द्र-सा, ध्रुव-सा निश्चल भय में॥

(६)

तुम्हें स्मरण करके उदार संयमी, सच्चरित जन हों।
पुर दुख देख दूर करने को उत्सुकतामय मन हों।
जनता सुनकर नाम तुम्हारा एक भाव में जागे।
सत्य-न्याय के संरक्षण में मुदित प्राण तक त्यागे॥

(७)

जग में सुख की प्राप्ति के लिये एक सहायक दुख है।
वही जगाता है सद्गुण को सद्गुण लाता सुख है।
वाधा, विघ्न, विपत्ति, कठिनता जहां-जहां सुन पाना॥
सब के वीच निडर हो जाना दुख को गले लगाना॥

(८)

गौर, श्याम, उत्तम, जघन्य, कुत्सित, कुरूप सुन्दर का।
होता नहीं विचार प्रेम के शासन में निज पर का।
घृणित अछूत अकिञ्चन जग में जो जन है जितना ही।
तुम से है वह प्रेम-प्राप्ति का पात्र अधिक उतना ही।

(९)

सदा लोक-सौन्दर्य-वृद्धि की कवि-सम चिन्ता करना।
मत दुख-सुख-विकार-वश होना प्रतिभा से पद धरना।
जो कहते हो—जगत् महा माया है, भीषण भ्रम है।
इस विचार में तुम को ही धोखा है, भ्रान्ति विषम है।

(१०)

जगन्नियंता की इच्छा से यह संसार बना है।
उसकी ही क्रीड़ा का रूपक यह समस्त रचना है।
है यह कर्म-भूमि जीवों की, यहां कर्मच्युत होना—
धोखे में पड़ना, अलभ्य अवसर से है कर धोना॥

(११)

एक अनन्त शक्ति वसुधा का संचालन करती है।
वह स्वतंत्र इच्छा, उद्भव, पालन करती है।
उसी शक्ति से ग्रह नियमित कक्षा में चकराते हैं।
और चीरकर महाशून्य को केतु निकल जाते हैं॥

(१२)

उसी शक्ति से सुन्दर घन से सुधा-बिन्दु झड़ता है।
करता हा-हा-कार वज्र पृथ्वी पर आ पड़ता है।
उसी शक्ति की सुखद प्रेरणा शुद्ध आत्म-सम्मति है।
करो उसी का कर्म, उसी की नियत समस्त प्रगति है॥

(१३)

परम विचित्र यन्त्र यह जग है उसी शक्ति से चलता।
मत करना अभिमान मिले जो तुमको कभी सफलता।
यद्यपि सब जग का हित-चिन्तन सबको आवश्यक है।
पर प्रत्येक मनुज पर पहला देश-जाति का हक है॥

(१४)

पैदा कर जिस देश जाति ने तुमको पाला-पोसा।
किये हुए है वह निज-हित का तुम से बड़ा भरोसा।
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्त्तव्य तुम्हारा।
फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा॥

(१५)

फिर कहता हूँ, डरो न दुख से कर्म-मार्ग सम्मुख है।
प्रेम-पन्थ है कठिन, यहां दुख ही प्रेमी का सुख है।
कर्म तुम्हारा कर्म अटल हो, कर्म तुम्हारी भाषा।
हो सर्कम मृत्यु ही तुम्हारे जीवन की अभिलाषा ॥

['पथिक' से]

मैथिलीशरण गुप्त

[जन्म सम्वत् १६४३]

आप खड़ी बोली के प्रायः सब से अधिक लोक-प्रिय कवि हैं, तथा आपकी रचनाओं ने कविता-प्रेमी-जनों को खड़ी बोली की ओर प्रेरित किया है। भारत-भारती, जयद्रथ-वध, रङ्ग में भङ्ग, अनघ आदि कितनी ही रुचिर रचनाएँ आपकी प्रकाशित हो चुकी हैं। कविता के क्षेत्र में आपने युगान्तर उपस्थित किया है—ऐसा कहना अत्युक्ति न होगी। गीति नाट्य और अतुकान्त रचना भी की है। आप राष्ट्रीय कवि हैं। तथा काव्य-कला का विकास भी इनकी रचनाओं में हुआ है।

* * *

व्यास-स्तवन

शुभ-सौम्य-मूर्ति तेजोनिधान,
हो अन्य भानु ज्यों भासमान।
ध्यानस्थ स्वस्थ सद्धर्म-धाम,
भगवान व्यास ! तुमको प्रणाम ॥ १ ॥
तव गुण अनन्त भू-कण समान,
है कौन उन्हें सकता बखान ?
उपकार याद कर तव अपार,
होते बुध विस्मित बार-बार ॥ २ ॥
कार ज्ञान-भानु तुमने प्रकाश,
अज्ञान निशा कर दी विनाश।
कर तव शिक्षामृत-पान शुद्ध:
संसार हुआ शिक्षित प्रबुद्ध ॥ ३ ॥
क्या राजनीति, सामान्य-नीति,
क्या धर्म-कर्म, क्या प्रीति-रीति।
क्या भक्ति-भाव, व्यवहार, वेश,
उपदेश दिये तुमने अशेष ॥ ४ ॥
होता है जग में जो सदैव,
जो हुआ और होगा तथैव।
कथनानुसार तव सो समग्र,
होता है, होगा, हुआ अग्र ॥ ५ ॥
जो दिखलाया तुमने समस्त,
हैं वही देख सकते सुदक्ष ।

तुमने न किया हो जिसे व्यक्त,
सब उसे बताने में अशक्त ॥ ६ ॥
है विषय अहो! ऐसा न एक,
जिसका न किया तुमने विवेक।
रचनायें कवियों की प्रशस्त,
उच्छिष्ट तुम्हारी हैं समस्त ॥ ७ ॥
कर वेदों का तुमने विभाग,
रक्षा की उनकी सानुराग।
वेदान्त-सूत्र रच कर अमोल,
हैं दिये हृदय के नेत्र खोल ॥ ८ ॥
सुनकर जिनका शुभ सदुपदेश,
रह जाता कुछ सुनना न शेष।
शुचि, शुद्ध, सनातन-धर्म-प्राण,
सो रचे तुम्हीं ने हैं पुराण ॥ ९ ॥
बुधजन-समाज जिसका तमाम,
है रक्खे पञ्चम वेद नाम।
इतिहास महाभारत पुनीत,
सो रचा तुम्हीं ने है प्रतीत ॥१०॥
हो जाता धर्म सहाय-हीन,
सब पूर्व-कीर्ति होती विलीन।
स्वच्छन्द विचरते पाप ताप,
लेते न जन्म यदि ईश आप ॥११॥
करता शुभ कर्म प्रचार कौन?
सिखलाता वेदाचार कौन?
हरता तुम बिन त्रय ताप कौन?

दिखलाता पूर्व-प्रताप कौन? ॥१२॥
करने को तव सन्मार्ग लुप्त,
हैं हुए यत्न बहु प्रकट, गुप्त।
वे हुए किन्तु निष्फल, निषिद्ध,
है क्योंकर सत्य असत्य सिद्ध? ॥१३॥
हिन्दुत्व हिन्दुओं का प्रधान,
है अब तक भी तो विद्यमान।
हे जगद्वन्द्य, करुणानिधान,
हो तुम्हीं एक इसके निदान ॥१४॥
जो आर्य-जाति का कीर्ति-गान,
पाता है जग में मुख्य मान।
है उसका जो गौरव महान,
सो किया आप ही ने प्रदान ॥ १५ ॥
वर्णन करते भी बार-बार,
रहते हैं तव गुण-गण अपार।
घन चाहे जितना भरें नीर,
घटता न किन्तु सागर गंभीर ॥ १६ ॥
है हमें तुम्हारा अमित गर्व,
है तव-कृतज्ञ संसार सर्व।
है भारत धन्य अवश्यमेव,
तुम हुए जहां अवतीर्ण देव! ॥ १७ ॥

———

वैकुंठ-दर्शन

[जब महाभारत में सात महारथियों द्वारा अभिमन्यु का वध

हुआ और जयद्रथ ने उसके शव का अपमान किया, तब अर्जुन बहुत क्षुब्ध हुए। उन्हें सांत्वना देने के प्रसंग में श्रीकृष्ण ने स्वर्ग का जो दृश्य दिखलाया था, उसी का वर्णन इस पाठ में है।]

बोले वचन भगवान तब उनसे प्रचुर प्रियता पगे—
हे वीर भारत! व्यर्थ को फिर व्यग्र तुम होने लगे।
अब तक तुम्हारा शोक यह क्या पूर्ववत् अनिवार्य है?
दुर्बल बनाकर मोह मन को नष्ट करता कार्य है॥ १॥
श्रीकृष्ण के सुन बचन कुछ उत्तर न अर्जुन ने दिया,
अतएव उनके स्कंध पर हरि ने करारोपण किया।
तब पड़ गये अवसन्न वे वैचित्र्य की-सी वृष्टि में,
था वह नितांत नवीन जो कुछ दृश्य आया दृष्टि में॥ २॥
देखा उन्होंने तब कि मानों वे बहुत ऊपर गये,
रवि-चंद्र-लोकों के मिले बहु दिव्य दृश्य नये-नये।
चलते हुए यों अंत में वैकुण्ठ देख पड़ा उन्हें,
अवलोक उसकी छवि हुआ आश्चर्य-हर्ष बड़ा उन्हें॥ ३॥
उज्ज्वल मनोरम थी वहां की भूमि सारी स्वर्ण की,
थीं जग रही जिसमें विपुल मणियां अनेकों वर्ण की।
प्रत्येक पथ के पार्श्व में फूले हुए बहु फूल थे,
उड़ते हुए जिनके रजःकण दिव्य शोभा-मूल थे॥ ४॥
जिनके सुधामय विमल जल कोमल सुगंध-सने हुए,
कुंडादि सलिलाशय रुचिर थे ठौर-ठौर बने हुए,
जोड़े मिलिन्दों के मुदित जिनसे मनोज्ञ मिले हुए,
नलिनी-नलिन आदिक जलज थे एक साथ खिले हुए॥५॥
जिनपर कहीं मणि की शिलाएं, तृण-वितान कहीं-कहीं।

छोटे बड़े क्रीड़ाद्रि थे शोभायमान कहीं-कहीं।
थे नाचते केकी कहीं, थे हंस-पुञ्ज कहीं-कहीं.
निर्झर कहीं थे झर रहे, थे रम्य कुंज कहीं-कहीं॥ ६॥
सब लोग अजरामर वहां के रूपवान विशेष थे,
बलवान शिष्ट वरिष्ठ जिनके दृग सदा अनिमेष थे,
सब अंग सुघटित श्रेष्ठ सबके, स्वर्ण वर्ण अशेष थे,
वर्णन किये जाते नहीं जैसे मनोहर बेश थे॥ ७॥
हों देखकर लज्जित जिन्हें कश्मीर कुंकुम क्यारियाँ,
थीं ठौर-ठौर विहार करतीं सुन्दरी सुर-नारियाँ।
सबके मुखों पर छा रही थी हर्ष की दिव्या-प्रभा,
मानों असंख्य सुधाकरों की थी वहाँ शोभित सभा॥ ८॥
सुरगण कहीं वीणा बजाकर हरि-चरित थे गा रहे,
कोई कहीं थे आ रहे, कोई कहीं थे जा रहे।
सर्वत्र क्रीड़ाएँ रुचिर बहु भाँति की थीं हो रहीं,
थी भद्र भावों की हुई पूरी पराकाष्ठा वहीं॥ ९॥
दुख, शोक, आधि व्याधि, चिन्ताएँ न कोई थी वहाँ,
आनंद उत्सव प्रेम के ही साज थे देखो जहाँ।
मद, मोह राग द्वेष के थे चिह्न भी मिलते नहीं,
सर्वत्र शांति पवित्रता थी पाप-ताप न थे कहीं॥ १०॥
इस जन्म में वैकुंठ था देखा न अर्जुन ने कभी,
प्रच्छन्न भित्ति कपाट आदिक, रत्नविरचित थे सभी।
बहु वर्ण किरणों का रुचिर आलोक अति उद्दंड था,
देखा हुआ मार्तंड मानों एक उसका खंड था॥ ११॥
जाती जहाँ तक दृष्टि थी, मिलता न उसका छोर था,
मंदार कल्पादिक द्रुमों का दृश्य चारों ओर था।

अद्भुत अनेकों रंग के स्वच्छंद खग थे गा रहे,
शीतल सुगंध समीर के थे मंद झोंके आ रहे ॥१२॥
फिर आप से ही आप वे हरि-धाम में खिच से गये,
देखा वहाँ का दृश्य जब युग नेत्र तब मिच से गये।
सिंहासनस्थ रमा सहित शोभित वहाँ भगवान थे,
घन-दामिनी जिनके यथा छाया-प्रकाश समान थे ॥१३॥
थी चंचला अचला जहाँ सर्वेश शोभित थे जहाँ,
वैभव वहाँ का-सा भला त्रैलोक्य में होगा कहाँ ?
अवलोक आभूषण-छटा होती अनल की भ्रांति थी,
करती अतिक्रम किन्तु उसको दिव्य उनकी कांति थी ॥१४॥
सानंद सिंहासन निकट थीं सिद्धियाँ सारी खड़ीं,
थीं व्यक्तरति, मति, धृति, क्षमादिक शांतियुत प्यारी बड़ी।
शिव, विधि, सुरप, रवि, शशि, यमादिक भक्ति से थे भर रहे,
करते हुए मुसकान हरि सब पर कृपा थे कर रहे ॥१५॥
इसके अनंतर पार्थ ने परिपूर्ण प्रेम उमंग में,
आता हुआ अभिमन्यु देखा जय-विजय के संग में।
अवलोक उस को सुध उन्हें कुछ भी रही न शरीर की,
शोभा सहस्र गुनी प्रथम से थी अधिक उस वीर की ॥१६॥
कर जोड़कर अभिमन्यु ने प्रभु को प्रणाम किया वहाँ,
फिर सब सुरों को सिर झुकाकर स्वस्तिवाद लिया वहाँ।
सब देव उसके कर्म का सम्मान अति करने लगे,
उस काल मानों पार्थ सुख के सिन्धु में तरने लगे ॥१७॥
था जो अशेष अभीष्टदायक, नित्य रहता था खिला,
वात्सल्य से अभिमन्यु को वह पद्म पद्मा से मिला।
तब दिव्य दर्शन से प्रभा की वृष्टि-सी करते हुए,

बोले स्वयं भगवान यों सब के हृदय हरते हुए॥१८॥
सन्तुष्ट तूने है किया निज धर्मपालन से मुझे,
अभिमन्यु! निज सामीप्य में देता सदा को हूँ तुझे।
पर और भी कुछ माँग तू वर वृत्त तेरा गेय है,
अपने जनों के अर्थ मुझ को कौन वस्तु अदेय है॥१९॥
अति मुग्ध हो कर पार्थ ने तब मूँद आंखों को लिया,
पर खोलने पर फिर न वैसा दृश्य दिखलायी दिया।
सुस्मित वदन श्रीकृष्ण को ही सामने देखा खड़ा,
चित्रस्थ से वे रह गये करते हुए विस्मय बड़ा॥२०॥

['जयद्रथ वध' से]

—०—

वीररत्न बाजीप्रभु देशपाण्डे

पन्हाल नामी गढ़ में सचेष्ट,
विख्यातकर्मा जब थे शिवाजी।
लेने पिता का बदला उन्हीं से,
आया वहां फ़ाज़लखां ससैन्य॥ १ ॥
वैरी चढ़े यद्यपि थे हज़ारों,
तो भी रहे वे विफल-प्रयत्न।
होता रहा युद्ध कई महीने,
सयुक्ति से शक्ति सदैव हारी॥ २ ॥
पाके कई बार विशेष हानि,
तो भी न वैरी खिसके वहां से
सोचा शिवा ने तब आपही यों—
कैसे चलेगा अब काम ऐसे॥ ३ ॥

हो मुक्ति जैसे इस आपदा से,
पायी उन्होंने तब और युक्ति।
ले वीर बांके कुछ एक रात,
निःशङ्क होके निकले वहां से॥ ४॥
घेरे हुए थे नृप को सभी वे,
उत्साह से थे वह किन्तु आगे।
गम्भीर सेनापति धीर वीर,
थे साथ बाजीप्रभु देशपाण्डे॥ ५॥
क्रोधान्ध होके सहसा इन्होंने,
धावा किया सत्वर शत्रुओं पै।
जैसे मृगों के गण में सरोष,
हो क्षुब्ध पञ्चानन टूटते हैं॥ ६॥
होके सुकर्त्तव्य-विमूढ़ भीत,
मारे गये शीघ्र अनेक वैरी।
आकीर्ण सेनार्णव तैर मानो,
पाया इन्होंने पथ रांगना का॥ ७॥
जाता हुआ देख इन्हें सगर्व,
पीछा किया तत्क्षण शत्रुओं ने।
निस्तब्धता भंग हुई निशा की,
आखेट भागा पकड़ो न छोड़ो॥ ८॥
बातें विषैली सुन शत्रुओं की,
जौलों खड़े हों फिर के शिवा जी।
तत्काल ही जान अनर्थ होता,
हो नम्र बाजी प्रभु ने कहा यों—॥ ९॥
रक्खा हमें रोक कटूक्तियों से,

हैं चाहते शत्रु अभीष्ट-सिद्धि।
धारो शठों से शठता सदैव,
भूलो न ये नीति कभी नरेश ॥१०॥
मैं रोकता हूँ सब शत्रुओं को,
जाओ यहां से तुम शीघ्र आगे।
हे तात! मेरा कहना विचारो,
रक्षा इसी में अब है हमारी ॥११॥
बोले शिवा जी तब हो गंभीर—
आओ, मरेंगे सब साथ आज।
ऐसे तुम्हें संकट में गिरा के,
क्या प्राण-रक्षा अपनी करूं मैं ॥१२॥
हो व्यग्र बाजीप्रभु शीघ्र बोले—
मेरे लिए सोच करें न आप।
उद्देश रूपी मख में हमारे,
साथी अनेकों बलिदान होंगे ॥१३॥
अगण्य बाजीप्रभु देश में हैं,
हैं एक ही किन्तु यहां शिवाजी।
पूरा हुआ कार्य अभी नहीं है,
क्या-क्या न जाने करना तुम्हें है ॥१४॥
मौक़ा नहीं वाद-विवाद का है,
हैं आ रहे शत्रु सवेग पीछे।
जाओ दुहाई तुमको गुरू की,
जाओ! महाराष्ट्र न हो अनाथ! ॥१५॥
यों आन ही पै तब वीर आधे,
लेके, बढ़े व्याकुल हो शिवाजी।

आ सैन्य बाजीप्रभु वैरियों की,
देखी प्रतीक्षा रह के अदृश्य ॥१६॥
ज्यों ही विपक्षी निकले वहां से,
वे क्रुद्ध हो टूट पड़े सवेग।
होने लगा युद्ध अतीव घोर,
सींची गई शोणित से धरित्री ॥१७॥
दो याम बीते लड़ते, परन्तु,
पाये न वैरी बढ़ एक पाद।
सारा क्षतच्छिन्न हुआ शरीर,
पीछे न बाजीप्रभु किन्तु लौटे ॥१८॥
जो आज प्राणों पर खेल के ये,
लेते नहीं रोक विपक्षियों को।
या तो शिवाजी बचते न जीते,
या हाथ आते निज शत्रुओं के ॥१९॥
आये शिवाजी जब रांगना में,
दागी गयीं सत्वर पांच तोपें।
था क्षेम का सूचक भीमनाद,
निश्चित बाजीप्रभु हो गये यों ॥२०॥
फैली मुख-श्री उनकी अपूर्व,
निर्वाण के पूर्व यथा प्रदीप—
मानों हृदय से प्रभु-धन्यवाद
दे, तेज से पूर्ण हुए विशेष ॥२१॥
की स्वामि-रक्षा मर के जिन्होंने,
है धन्य बाजीप्रभु देशपांडे।
ओहो, महाराष्ट्र जियोंनिडास !

है सर्वथा दुर्लभ मृत्यु ऐसी ॥२२॥

थे वीर ऐसे जिनके वलिष्ठ,
होते शिवाजी न समर्थ कैसे ?
आजन्म राष्ट्र-स्थिति योग्य कार्य,
हो भी कभी क्या सकता अकेले ॥२३॥

हैं आज बाजीप्रभु देश में क्या,
तो भी है बनी उनकी सुकीर्ति।
ऐसे कहीं वीर कभी मरे हैं!
सोचो न वार्ता यह बेतुकी है ॥२४॥

शुभ कामना

सबकी नसों में पूर्वजों का पुण्य-रक्त प्रवाह हो,
गुण, शील, साहस, बल तथा सबमें भरा उत्साह हो।
सबके हृदय में सर्वदा समवेदना की दाह हो,
हमको तुम्हारी चाह हो, तुमको हमारी चाह हो॥
विद्या, कला, कौशल्य में सबका अटल अनुराग हो,
उद्योग का उन्माद हो, आलस्य-अघ का त्याग हो।
सुख और दुःख में एक-सा सब भाइयों का भाग हो,
अन्तःकरण में गूँजता राष्ट्रीयता का राग हो॥
कठिनाइयों के मध्य अध्यवसाय का उन्मेष हो,
जीवन सरल हो, तन सबल हो, मन विमल सविशेष हो।
छूटे कदापि न सत्य पथ निज देश हो कि विदेश हो,
अखिलेश का आदेश हो जो, बस वही उद्देश हो॥
आत्मावलम्बन ही हमारी मनुजता का मर्म हो,

षड्रिपु समर के हित सतत चारित्र्य रूपी वर्म हो।
भीतर अलौकिक भाव हो, बाहर जगत का कर्म हो,
प्रभु-भक्ति, पर-हित और निश्चल नीति हो, ध्रुव धर्म हो॥
उपलक्ष के पीछे कभी विचलित न जीवन-लक्ष हो,
जब तक रहें ये प्राण तन में पुण्य का ही पक्ष हो।
कर्त्तव्य एक न एक पावन नित्य नेत्र-समक्ष हो,
सम्पत्ति और विपत्ति में विचलित कदापि न वक्ष हो॥
इस वेद के उपदेश का सर्वत्र ही प्रस्ताव हो,
सौहार्द और मतैक्य हो, अविरुद्ध मन का भाव हो।
सब इष्ट फल पावें परस्पर प्रेम रख कर सर्वथा,
निज यज्ञ-भाग समानता से देव लेते हैं यथा॥

['भारत भारती' से]

पदुमलाल-पुन्नालाल बख्शी बी० ए०

[जन्म सम्वत् १९४५]

आप सुप्रसिद्ध समालोचक और सम्पादक हैं। कविताएँ आपने लिखी हैं लेकिन कम। और जो लिखी हैं वे प्रायः अच्छी हैं। आप बड़े भावुक हैं और यह भावुकता इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होती है। आपके दो ग्रन्थ 'साहित्य विमर्श' और 'विश्व-साहित्य' निकल चुके हैं; जिनके द्वारा हिन्दी समालोचन-शैली में पाश्चात्य-आलोचना के ढङ्ग का प्रवेश हुआ है। 'सरस्वती' का सम्पादन कई वर्ष तक किया और उसमें पश्चिमी साहित्य का रङ्ग चढ़ाया। इन दिनों आप राजनादगांव (सी० पी०) में शिक्षा विभाग में हैं। अंगरेजी और हिन्दी दोनों ही के आप प्रकाण्ड पण्डित हैं।

❀ ❀ ❀

बुद्धदेव

भगवन्, यह कैसी है रीति !
तुम हो यतिवर, ऐसी हमको
होती नहीं प्रतीति ।

कपिलवस्तु था क्षुद्र, हो गया
वह तो तुमको त्याज्य ।
किया प्रतिष्ठित अखिल विश्व में
आज अचल साम्राज्य ॥

प्रणयीजन थे अल्प, छोड़ दी
तुमने उनकी प्रीति ।
जोड़ लिया सम्बन्ध जगत से,
यह क्या नहीं अनीति ?

थी विरक्ति, तो हुआ तुम्हारा
जग से क्यों अनुराग ?
जग-सेवा कर सेव्य हो गये,
यह कैसा है त्याग ?

छूट गये तुम भव-बंधन से,
यह केवल उपहास ।
मानव-हृदय हुआ वंदीगृह,
वहीं तुम्हारा वास ॥

कृपक

राज्य उसका है यह कांतार ।
यहीं वह करता सदा विहार ॥

जरा-जीर्ण वैभव-विहीन है उसका पर्ण-कुटीर।
किंतु निरत उसकी सेवा में रहता नित्य समीर॥
सूर्य करता उसका शृङ्गार।
करों से रंजित करता द्वार॥ १॥

जब मध्याह्न-काल में रवि का छाता उग्र प्रताप।
तब उसको आश्रय देती है तरु-छाया निष्पाप॥
विश्व का है उस पर ही भार।
तभी अक्षय उसका भंडार॥ २॥

निशा-काल में पृथ्वी उसको देती अपना अंक।
फैलाता अनंत नभ अंचल, सोता वह निःशंक॥
चंद्र करता अमृत-संचार।
शांति का कर देता विस्तार॥ ३॥

ग्रीष्म काल की ज्वाला हो या जल का धारा-पात।
कभी शिथिल होता है उसका क्षण भर भी क्या गात॥
जगत का करता वह उपकार।
जानता है क्या यह संसार॥ ४॥

कर कर्त्तव्य पूर्ण वह जग से जाता है चुपचाप।
मूढ़ जगत को दुख क्या होगा, करती प्रकृति विलाप॥
अश्रुओं का यह अक्षय हार।
उसी का है अंतिम उपहार॥ ५॥

जय शंकर 'प्रसाद'

[जन्म संवत् १९४६]

वर्तमान युग के आप युगांतरकारी कवि माने जाते हैं। ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों ही में कविताएँ लिखी हैं; किंतु काव्य-क्षेत्र में आप प्रायः 'रहस्यवादी' कवि के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपके लिखे अजातशत्रु, स्कंदगुप्त तथा चंद्रगुप्त आदि नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं। 'कंकाल' नाम का उपन्यास तथा कई कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। और नाटक, उपन्यास तथा काव्य सभी क्षेत्रों में कला का विकास हुआ है। गीति नाट्य तथा भिन्न तुकांत काव्य भी आपने लिखे हैं। प्रसाद जी प्राच्य संस्कृति के अनन्य उपासक जान पड़ते हैं; उसी की उपासना और साधना का प्रमाण उनकी कृतियां देती हैं। संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ हैं तथा बँगला भी जानते हैं। आपकी कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

❀ ❀ ❀

पतझड़-समीर

(चतुर्दश-पदी)

चल, वसंत-बाला-अंचल से किस घातक सौरभ में मस्त,
आतीं मलयानिल की लहरें जब दिनकर होता है अस्त।
मधुकर से कर संधि, विचर कर उषा नदी के तट-उस पार;
चूसा रस पत्ती-पत्ती से, फूलों का दे लोभ अपार।
लगे रहे जो अभी डाल से बने आवरण फूलों के;
अवयव थे, शृङ्गार रहे, जो वनमाला के झूलों से।
आशा देकर गले लगाया, रुके न वे फिर रोके से;
उन्हें हिलाया, बहकाया भी, किधर उड़ाया झोंके से।
कुम्हलाए, सूखे, ऐंठे, फिर गिरे अलग हो वृन्तों से;
वे निरीह मर्माहत होकर, कुसुमाकर से कुन्तों से।
नवपल्लव का सृजन। तुच्छ है, किया बात से वध जब क्रूर;
कौन फूल-सा हँसना देखे, वे अतीत से भी अब दूर।
लिखा हुआ उनकी नस-नस में इस निर्दयता का इतिहास;
तू अब 'आह' बनी घूमेगी, उनके अवशेषों के पास।

['अजातशत्रु' से]

अव्यवस्थित

विश्व के नीरव निर्जन में,
जब करता हूँ केवल चंचल
मानस को कुछ शान्त,

होती है कुछ ऐसी हलचल
तब होता है भ्रान्त—
भटकता है भ्रम के बन में
विश्व के कुसुमित कानन में।
जब लेता हूँ आभारी हो
वल्लरियों से दान,
कलियों की माला बन जाती
अलियों का हो गान;
विकलता बढ़ती हिमकन में,
विश्वपति तेरे आंगन में।
जब करता हूँ कभी प्रार्थना
कर संकलित विचार,
तभी कामना के कंकण की
हो जाती झनकार;
चमत्कृत होता हूँ मन में
विश्व के नीरव निर्जन में

— ——

सुत-विक्रय

(गीतिनाट्य)

[अजीगर्त के कुटीर में अजीगर्त और तारिणी]

अजी०—प्रिये ! एक भी पशु न रहे अब पास में,
तीन पुत्र; भोजन का कौन प्रबन्ध हो।
यह अरण्य भी फल से खाली हो गया,
केवल सूखी डाल, पात फैले, अहो

नव बसन्त में जब यह कुसुमित था हुआ,
तब तो अलि, शुक और सारिका नीड़ में
कोमल कलरव सदा किया करते। अहो!
जहां फैल कर लता चरण को चूमती
कोमल किसलय अधर मधुर से प्रेम से,
अब सूखे कांटे गड़ते हैं, हा! वहीं
कानन की हरियाली ही सब भूख को
तुरत मिटाती थी देकर फल फूल ही
वहां न छाया भी मिलती है धूप में—
कहो प्रिये, अब फिर क्या करना चाहिये?

तारि०—हाय! क्या कहें प्राणनाथ इस भूमि में,
अब तो रहना दुष्कर सा है हो गया।

[नेपथ्य से रोहित—]

"घबराओ मत अजीगर्त मैं आ गया।"

[प्रवेश करके]

कहिये क्या है दुःख आपको, जो अभी इतने व्याकुल होकर यों किस बात को सोच रहे थे? क्या पशुओं का दुःख है?

अजी०—तुम तो जैसे सत्य बात हो जानते
और दिखाई देते राजकुमार-से,
स्वर्ण-खचित यह शिरस्त्राण है कह रहा
वर्म बना बहुमूल्य बताता विभव को;
किन्तु सकोगे समझ भूख के दुःख को
और विकल पीड़ित अकाल से प्राण को,
जीवन की आकुल आशा जब त्रस्त हो

एक-एक दाने का आश्रय खोजती
वह वीभत्स पिशाच खा लिया चाहता
जब अपना ही मांस अधीर विडम्बना
हँसती हो इन दुर्बल शब्दों पर, अजी
तब तो तुम कुछ दोगे मुझे सहायता ?

रोहि०—एक बात यदि तुम भी मेरी मान लो।

अजी०—मानूँगा कैसी ही निष्ठुर बात हो।

रोहि०—सौ दूँगा मैं गाय तुम्हें, जो दो मुझे—
एक पुत्र अपना, उस पर सब स्वत्व हो
मेरा, उसको चाहे जो कुछ मैं करूं।

तारि०—दूँगी नहीं कनिष्ठ पुत्र को मैं कभी।

अजी०—और ज्येष्ठ को मैं भी दे सकता नहीं।

रोहि०—तो मध्यम सुत दे देना स्वीकार है—
बलि देने के लिये एक नरमेध में ?
(ऋषि-पत्नी मुँह ढाँप कर भीतर चली जाती है
और अजीगर्त कुछ सोचने लगता है)

अजी०—हाँ-हाँ ! मुझको सब बातें स्वीकार हैं।
चलो मुझे पहले गायें दे दो अभी।

रोहि०—अच्छा, उसको यहां बुलाओ देख लें—
हम भी; मध्यम पुत्र तुम्हारा है कहां ?

अजी०—(नेपथ्य की ओर मुँह करके)
शुनः शेफ ! ओ शुनः शेफ आजा यहां।
(मार खाने के भय से, खेल छोड़कर शुनः शेफ
भागता हुआ आता है)

शुनः—क्या है बाबा, क्यों हो मुझे बुला रहे ?

मैंने कोई भी न किया है दोष, जो—
आप बुलाते मुझे मारने के लिये।
अजी०—चुप रह तू ओ मूर्ख ! बोलना मत, यहां खड़ा रह,
(रोहित से)
यही मध्यम मेरा पुत्र है

रोहि०—अच्छा है। बस, चलो अभी तुम साथ में,
राज्य-केन्द्र में चलते हैं हम भी अभी,
उसी स्थान में मूल्य तुम्हें मिल जायगा
और इसे हम ले जाते हैं संग ही।
[शुन: शेफ से]
चलो, चलो जी साथ हमारे शीघ्र ही
मेरे हाथ तुम्हारा विक्रय हो चुका।
[शुन:शेफ का अजीगर्त की ओर सकरुण देखते हुए
रोहित के साथ प्रस्थान]

('करुणालय' से)

—०—

बदरीनाथ भट्ट बी. ए.

[जन्म संवत १६४८]

भट्ट जी ने गद्य-पद्य दोनों में लिखा है। पद्य की अपेक्षा गद्य अधिक लिखा है और गद्य में अधिकतर नाटक और प्रहसन। आप नाटककार के ही रूप में अधिकतर परिचित हैं। चंद्रगुप्त, चुंगी की उम्मेदवारी, दुर्गावती आदि नाटक तथा लबड़ धों धों और विवाह विज्ञापन आदि प्रहसन आपकी सुप्रसिद्ध कृतियां हैं। अँगरेज़ी, हिन्दी और गुजराती के ज्ञाता हैं और इन दिनों लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी के लेक्चरार हैं कविताएँ अधिकतर आपने खड़ी बोली में लिखी हैं।

❀ ❀ ❀

सूरदास

सूर को अन्धा कौन कहे ?

करे लोक को जो आलोकित अन्धा वही रहे ? ॥ १ ॥

क्या प्रभु ने प्रत्यक्ष दिखाया दीप तले तम रूप ?

नहीं, घोर तम में दिखलाया दीपक दिव्य अनूप ॥ २ ॥

दिये बिहारी चकाचौंध से सब के नेत्र बिगाड़,

अन्तर्दृष्टि किन्तु दी तुमको सभी हटाई आड़ ॥ ३ ॥

नेत्र-रहित हो उस अथाह की पाइ तुमने थाह,

नेत्र-सहित हम थके भटकते नहीं सूझती राह ॥ ४ ॥

गही कृष्ण ने बांह तुम्हारी हुई न अड़चन नेक,

तुम्हें कृष्ण ही थी सब दुनियां थे तुम दोनों एक ॥ ५ ॥

जिस अदृश्य ने अन्धकूप से खींच किया दुख दूर,

कैद उसी को किया हृदय में हो तुम सचमुच सूर ॥ ६ ॥

कहीं न देखा सुना गया था सूर-श्याम का साथ,

लेकिन तुमने कर दिखलाया वह भी हाथों-हाथ ॥ ७ ॥

अलङ्कार-ध्वनि-रसमय निकली हृदय वेणु से तान,

वही हमारे लिये बन गई मधुर अलौकिक गान ॥ ८ ॥

जिस सद्भक्ति-तत्व को उसने फैलाया सब ठौर,

उसे भूलकर हन्त ! हुये हम आज और के और ॥ ९ ॥

—

तुलसीदास और रामायण

सुलभ कर गये ब्रह्म का ज्ञान ।

तरने को भव-सिन्धु बनाया राम नाम जलयान ॥ १ ॥

दृश्य-अदृश्य, अलौकिक लौकिक मिले एक ही ठांव ।

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदि आ बसे एक ही गांव ॥ २ ॥
स्वार्थ और परमार्थ मिलाया, हुआ सार निस्सार;
अनुभव की कुंजी से खोला अगम मुक्ति का द्वार ॥ ३ ॥
मोह शिखर पर फँसे जनों को सीढ़ी है तैयार;
गिरने का है डर न ज़रा भी राम नाम आधार ॥ ४ ॥
रोम-रोम में रमा तुम्हारे राम रूप संसार;
भक्ति-प्रेम-अवतार धन्य है तुमको बारम्बार ॥ ५ ॥

स्वामीजी

इसे ही कहते हैं वैराग्य ?

तो विरागता के सचमुच ही फूटे समझें भाग्य !
निर्मल बसन बिगाड़ा उस पर धरा सुनहरा रंग,
लज्जित हुआ जाल माया का देख जटा का ढङ्ग।
क्रोध-कमण्डलु, मोहमाल, कर लिया द्रोह का दंड,
लोभ लँगोट बांध फैलाते हो प्रचंड पाखंड।
तन में भस्म रमाई, कर के भस्म सभी घर-बार,
अब चिमटा ले निकल पड़े हो करने जग उद्धार।
घर-घर टुकड़े मांग रहे हो तप के बल हो धन्य !
दर-दर नित धक्के खाते हो अहो कष्ट तप-जन्य !
चोरी, जुआ, लफंगेपन में हो तुम गुरुघंटाल,
गांजा, भंग, अफीम, चरस रस मदिरा के हो काल।
संसृति में खुद फँसे हुए हो हमें दिखाते मुक्ति !
धन्य-धन्य अध्यात्मशक्ति को, धन्य मुक्ति की युक्ति !
बहुत हो चुकी गुरुडम-लीला अब इससे मुहँ मोड़,
बाबा जी, अब बन मनुष्य तू बनमानुसपन छोड़।

ठाकुर गोपालशरणसिंह

[जन्म सम्वत् १६४१]

आप खड़ी बोली के प्रतिष्ठित कवि हैं। व्रजभाषा की मधुरता को आपने खड़ी बोली में प्रवाहित किया है। न केवल भाषा माधुर्य को ही, वरन् व्रजभाषा काव्य के प्राचीन भावों को भी उन्होंने नये सांचे में ढाला है। अखिलभारतवर्षीय कवि-सम्मेलन के सभापति का आसन सुशोभित कर चुके हैं। आपकी कविताओं का संग्रह 'माधवी' नाम से प्रकाशित हुआ है। आप लोक-प्रिय कवि हैं। खड़ी बोली की शुद्धता के विशेष पक्ष-पाती हैं

❀ ❀ ❀

तुलसीदास

(१)

हो सकता है सूर्य तुम्हारे तुल्य किस तरह तुलसीदास ?
होने पर भी अस्त तुम्हारा छाया जग में अतुल प्रकाश।
दिन-दिन अधिकाधिक आलोकित होता है साहित्याकाश;
कविता-कला कमलिनी का तुम करते हो दिन-रात विकाश।

(२)

भक्ति-भाव भंडार तुम्हारा विमल उदार हृदय का सार;
था मानों आगार प्रेम का परम ज्ञान का पारावार।
उसमें ऐसे कंज खिले थे, सरस, अलौकिक सभी प्रकार;
जिनके सौरभ से आमोदित है सारा हिन्दी संसार।

(३)

हमको तुमने दिया न केवल काव्य रत्न का ही उपहार;
रामचरित-मानस में तुमने भरा दर्शनों का भी सार।
भवसागर के तरने को, की तुमने एक नाव तैयार;
यह सारा संसार उसी पर सुख से उतर रहा है पार।

(४)

तुमने किया त्याग पत्नी का उस पर समझ प्रेम निज भ्रान्त;
सुनकर राम भक्ति के रस में तुम हो गये विरक्त नितान्त।
पर तो भी क्या हुई तुम्हारी श्रृङ्गारिक वासना न शान्त ?
किया अन्त में कपट प्रिया से बनकर कविता-कामिनि कान्त।

(५)

जिसकी कीर्ति-कौमुदी का है, जग में फैला हुआ प्रकाश;

उसके ऊपर कुटिल काल का भी होता है विफल प्रयास।
कहीं नहीं तुम गये, हुआ है भौतिक तन का केवल नाश;
ग्राम-ग्राम में, धाम-धाम में अब भी यहां तुम्हारा वास।

वह

(१)

रहती उसी की मञ्जु मूर्ति मनो-मन्दिर में,
जग-मग ज्योति जग रही मन भाई है।
लोचनों ने जल भर-भर नहलाया उसे,
अश्रु-मोतियों की मृदु माला पहनाई है।
उर ने पवित्र प्रेम-आरती दिखाई उसे,
सांसों ने चलाया पंखा अति सुखदाई है।
चित्त-वृत्तियां हैं सब सेवा में उसी की लगी,
प्राणों में उसी की आज होती पहुनाई है।

(२)

उसके विचित्र छवि-जाल में विलोचन ये,
उलझ रहे हैं किस भांति सुलझाऊँ मैं ?
तन-मन, प्राण सब वश में उसी के हुए,
मैं हूँ परेसान किसे-किसे समझाऊँ मैं ?
अङ्कित हिये में चित्र उसका कुलिश से है,
होता नहीं ज्ञात उसको मिटाऊँ मैं ?
रोम-रोम में है सुध उसकी समाई हुई,
कहो किस भांति भला उसे भूल जाऊँ मैं,

(३)

मचल रहा है मन मत्त हो उसी के लिए,
यद्यपि उसी का सदा मन में निवास है।
रूप-सुधा-पान से न नेक भी हुई है कम,
प्रत्युत हुई है तीव्र कैसी यह प्यास है?
ज्यों-ज्यों यह चित्त चितचोर से हटाया जाता,
त्यों-त्यों वह खिंचता उसी के और पास है।
चढ़ गया और प्रेम-पारा देखने से उसे,
बढ़ गया और देखने का अभिलाष है।

(४)

क्या न है बसेरा प्राण ही में प्राण-वल्लभ का,
फिर क्यों सदैव प्राण रहता अधीर है?
क्यों न तृप्त होते पान करके विलोचन ये,
उसके स्वरूप की सुधा ही नेत्र-नीर है।
जानता नहीं क्या उर-कुंज में छिपा है वह,
क्यों सदा पुकारता उसी को कण्ठ-कीर है?
एक क्षण भी है उसे भूलने न देती कभी,
धन्य-धन्य मेरे मानस की पीर है।

मातादीन शुक्ल

[जन्म संवत् १६५०]

मातादीन शुक्ल (उपनाम 'सुकवि नरेश' और 'विदग्ध') का ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों पर अधिकार है। कई वर्षों तक प्रमुख मासिक पत्रिकाओं का संपादन कार्य करते-करते आप को देशिक स्थिति तथा वर्तमान साहित्यक प्रगति का पूर्ण अनुभव हो गया है। अंगरेज़ी और संस्कृत के पंडित होने के कारण आप आधुनिक तथा प्राचीन संस्कृत से भी अभिज्ञ हैं इसलिए आपकी रचना में भाववैचित्र्य और कलाप्रदर्शन दोनों हैं। इधर कुछ समय से आप व्यापक राष्ट्रीय भावों को काव्य का आवरण पहनाने के प्रयत्न में हैं। हिंदी साहित्य को आप से बहुत कुछ आशा है।

❀ ❀ ❀

अम्मा की चिता

धू-धू कर जल रही होलियां कितनी देखीं;
गगन चूमती सती टोलियां कितनी देखीं।
ताजों पर सुलगती गोलियां कितनी देखीं;
समय-चक्र की रंगरेलियां कितनी देखीं।
देखी—थीं कितनी देख लीं;
अग्नि देव की जल्पना।
कर लीं कितनी ही कर चुके;
उग्र रूप की कल्पना।
परंपराएं, किन्तु, आज भी बनी हुई हैं;
पशुता की पाखन्ड वृत्तियां तनी हुई हैं।
वैभव की वासना छत्र में सनी हुई हैं;
कुटिल काल की क्रूर कटारें हनी हुई हैं।
पर अम्मा की उस चिता में,
जली जारही शांति थी।
शैशव के वैभव की अरे;
मिटी जा रही कांति थी।
सिरहाने पावनी गोमती की धारा थी;
श्री चरणों पर बरस रही दृग-जल-धारा थी।
ऊपर नभ में घनीभूत वारिद-माला थी;
छिपी चंद्रिका खड़ी लिये अमृत-प्याला थी।
कोई भी तो न बुझा सके,
व्योम-वेधती आग को,

कोई भी हा न जगा सके—
शिशु के बुझते भाग को।

उकठ काठ का ढेर, जिसे अम्मा ने तापा;
वही-जिसे निर्जीव समझ था फूँका-तापा।
प्रति-हिंसा-परिपूर्ण हृदय से रचकर कांपा;
ठुकराये विकराल सर्प-सा खोकर आपा।

सूखे हाड़ों की आड़ में;
मानों बदला ले रहा।
पददलितों के अभिमान को;
मानों जीवन दे रहा।

उसी ध्वंसकर ज्वाल-जाल में नभ हिलता था;
वायु प्रकंपित, दिशा शून्य, भूतल जलता था।
मातृ-वेदना करुण-रूप धर सिसक रही थी;
मर्माहित हो धरा तलातल खिसक रही थी।

आंसू बन बह-बह उसी पर;
स्नेह हो रहा राख था।
भादों की झड़ियों में अरे;
झुलस रहा वैशाख था।

कल तक जिसके वक्षःस्थल में उधम मचाया;
मचल-मचल कर खूब खिझाकर फिर इठलाया।
गा-किलकारी गीत वैरियों को दहलाया;
याद नहीं, क्या खेल-खेल कर क्या था खाया।

एक-एक कर वे सभी, आ—
खड़े सामने नाचते।

अंकित मेरे इस हृदय में;
मां का गौरव बांचते।

कुटिया में दे जन्म महल का ठाट दिखाया;
चिथड़ों ही में पाट-पटंबर साज सजाया।
सोया था मैं—मुझे जगाकर ज्ञान सिखाया;
अंधकूप से उठा, विश्व क्या है-बतलाया।

मुझ निराधार के शीश पर;
रक्खा अपना हाथ था।
मानों मैं ही सम्राट था;
छत्र धरा था, ताज था।

बटन देख कर कसा, सिहर कर थी जग जाती;
कह उठती थी, अरे, दबी जाती है छाती।
उसी वक्ष पर धरा आज यह विश्व भार है;
इतना बोझिल है कि नहीं उसका सँभार है।

है चूर-चूर करती मुझे;
उसकी भीषण धारणा।
अब कौन सोच सकता यहां—
उसकी तीव्र प्रतारणा।

तू होती उठता न कभी विपदा का बादल;
तेरी 'फू' में उड़ जाता था सारा दल का दल।
अग्नि-शिखामें बाल-भाव क्यों जल-जल रोता;
क्यों होता मातृत्व-अन्त-क्यों कंपन होता!

तेरी तो मृदु मुसकान में;
बह जाती थी आपदा।

तव स्निग्ध ज्योति में थी भरी;
वसुधा की सब संपदा।
चुटकी तेरी बजी देख पीड़ा थी हारी;
ताली में थी बसी विधाता की करतारी।
गोदी में सर्वदा इन्द्र-सिंहासन भाया;
चुम्बन में क्या रहा-अभी तक जान न पाया।
वह क्या था?-स्रोत पियूष वह;
अथवा क्या?-किस ओर है?
बतला दे अब! बुझा चलूँ;
चिताज्वाल घनघोर है।

———

मुकुटधर पांडेय

[जन्म संवत् १९५२]

आप एक प्रकृति-पूजक कवि हैं। करुणा और सहृदयता का सामंजस्य आपकी रचना की विशेषता है। जान पड़ता है, कवि विश्व की विभीषिका से ऊब गया है। पिछले कई वर्षों से आपका मस्तिष्क विकृत हो गया है, इसलिए लिखना-पढ़ना प्रायः बन्द है। किन्तु थोड़ी ही अवस्था में कवि ने जो क्षीण-काव्य-प्रवाह बहाया है, वह उसकी प्रतिभा का प्रमाण है। इन्होंने प्रायः खड़ी बोली में लिखा है और अच्छा लिखा है। इनकी रचना में स्पन्दन है, हिलोर और झंकार भी है।

* * *

उद्गार

(१)

किंशुक-कुसुम देख शाखा पर फूला तुझे,
मेरा मन आज यह फूला न समाता है;
पूरे एक वर्ष पीछे आया फिर देखने में,
इतने दिवस भला कहां तू बिताता है?
कौन-कौन देश घूम आया इस बीच में तू;
हाल क्यों वहां का नहीं मुझको सुनाता है;
भूल तो गया न मुझे जाके उस अञ्चल में,
क्या न उपहार कुछ मेरे लिये लाता है ?

(२)

है क्या तुझे याद कभी ठीक इसी ठौर पर,
तेरे साथ खेलने में प्रात मैं बिताता था;
एक ओर उषा का अरुण-हास, एक ओर,
आनन अरुण तब देख सुख पाता था।
ठीक इसी भांति यह आम खूब बौर कर,
अपनी अपार छटा हमको दिखाता था;
तुझको झुलाता कभी धीरे से, कभी तो रम्य,
स्वागत में तेरे मैं मधुर गीत गाता था।

(३)

कभी किसी तरु ही को मान वन-देव मैं तो,
श्रद्धायुत तेरी कुसुमांजलि चढ़ाता था;

कभी तुझे *महानदी-नीर में बिखेर कर,
तेरी दिव्य आभा देख मोद उर लाता था।
शिशुओं के हेतु कभी किंशुक-कुसुम ! तुझे,
पत्र से मैं तोड़-तोड़ साथ लिये जाता था;
लाल पंखड़ी के बाल-विहग बना के अहा !
बाल उर उनका न हर्ष से समाता था।

(४)

छाया बन बीच आज सरस वसंत वही,
मैं भी वही, और वही भूमि भी पवित्र है;
बदला न तू भी पर देखने में आता नहीं,
आज किस हेतु यह सुखद चरित्र है !
भूल-भूल जाता मम मानस नयन बीच,
विविध विनोदमय वह मोद चित्र है;
बात कल की थी, और आज कुछ और ही है,
विधि का विधान मित्र ! ऐसा ही विचित्र है।

(५)

कहता तुझे था कभी किंशुक-कुसुम देख;
जैसा तव रूप, वैसी तुझ में न वास है;
सरसिज-सुमन सुसौरभ में सौरभित,
करता समीर यह तेरा उपहास है,
किन्तु है मलीन मम जीवन-कुसुम आज,
वह न सुगन्धमय सरस विकास है;
देख-देख मेरी दशा आती है दया क्या तुझे ?
किवां तेरे मुख पर यह व्यंग्य हास है ?

---

* मध्य प्रदेश की सुप्रसिद्ध नदी।

(६)

किंशुक-कुसुम ! जब विगत वसन्त होगा,
मौन होगी कोकिल, प्रखर ग्रीष्म आवेगा;
सूखेंगे कुटज-कचनार के सुमन-हार,
तरुण तरणि लोनी लतिका जलावेगा।
होके वृन्तच्युत तब तू भी यह भूमि छोड़,
मुझसे विदा हो दूर देश चला जावेगा;
होगी भगवान से जो भेंट कहीं, याद कर
करुण-कथा तू मेरी उनको सुनावेगा !

(७)

अपनी दशा पर विचार करता हूँ जब,
सत्य कहता हूँ, नयनों में अश्रु छाते हैं;
दूर करने के दुख, यत्न हैं किये अनेक,
किन्तु एक भी तो कुछ काम नहीं आते हैं;
एक अब आश भगवान रामचन्द्र जी की,
आर्तत्राण कह जिन्हें वेद बुध गाते हैं;
करुणा करेंगे वह करुणानिधान कब,
किंशुक-कुसुम ! मेरे प्राण अकुलाते हैं।

सियारामशरण गुप्त

[जन्म सम्वत् १९५२]

आप खड़ी बोली के ख्यातनामा कवि हैं। शुद्ध, व्यवस्थित, प्रौढ़ तथा सशक्त भाषा में कविता लिखते हैं। अतुकान्त तथा गीतिनाट्यशैली को भी किसी-किसी रचना में अपनाया है। सामयिक विषयों पर बहुत कुछ लिखा है। इनका एक खण्ड काव्य 'मौर्य विजय' नाम से प्रकाशित हो चुका है तथा 'आर्द्रा' और 'दूर्वादल' नाम से कुछ फुटकर कविताओं का संग्रह भी छपा है। इनकी पंक्तियां बड़ी ही प्राणप्रद रहती हैं, तथा व्यञ्जना भी बड़ी मार्मिक होती है। 'हृदयवाद' की सीमा को पार कर कभी-कभी इनकी रचनाएं रहस्यवाद का स्पर्श करती हैं। किन्तु अधिकांश में आख्यान और वर्णना इनकी लोक-प्रिय हुई है। आप बाबू मैथिलीशरण जी के अनुज हैं।

❀ ❀ ❀

मौर्य-विजय

जग में अब भी गूँज रहे हैं गीत हमारे।
शौर्य वीर्य गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे॥
रोम, मिश्र, चीनादि कांपते रहते सारे।
यूनानी तो अभी-अभी हम से हैं हारे॥
सब हमें जानते हैं, सदा भारतीय हम हैं अभय;
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय॥१॥

साक्षी है इतिहास हमीं पहले जागे हैं।
जागृत सब हो रहे हमारे ही आगे हैं॥
शत्रु हमारे कहां नहीं भय से भागे हैं।
कायरता से कहां प्राण हमने त्यागे हैं॥
हैं हमीं प्रकम्पित कर चुके सुरपति तक का भी हृदय;
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय॥२॥

कहां प्रकाशित नहीं रहा है तेज हमारा।
दलित कर चुके सभी शत्रु हम पैरों द्वारा॥
बतलाओ वह कौन, नहीं जो हम से हारा।
पर शरणागत हुआ कहां कब हमें न प्यारा॥
बस, युद्धमात्र को छोड़कर कहां नहीं हैं हम सदय?
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय॥३॥

कारणवश जब हमें क्रोध कुछ हो आता है।
अवनि और आकाश प्रकम्पित हो जाता है॥
यही हाथ वह कठिन कार्य कर दिखलाता है—
स्वयं शौर्य भी जिसे देखकर सकुचाता है॥

हम धीर-वीर गम्भीर हैं, है हम को अब कौन भय;
फिर एक बार हे विश्व ! तुम गाओ भारत की विजय ॥४॥

['मौर्य-विजय' से]

माली

माली, देखो तो, तुमने यह,
कैसा वृक्ष लगाया है !
कितना समय हो गया, इस में,
नहीं फूल भी आया है ।
निकल गये कितने वसन्त हैं,
बरसातें भी बीत गईं;
किन्तु प्रफुल्लिता इसे किसी ने,
अब तक नहीं बनाया है !
साथ छोड़ती जाती हैं सब,
शाखा आदि रुखाई से;
शुष्क हुए पत्तों को इसने,
इधर-उधर छितराया है ।
अतुल तुम्हारे इस उपवन की,
इससे भी कुछ शोभा है ?
क्या निज कौशल दिखलाने को,
इसे यहां उपजाया है ?
अरे, काट ही डालो इसको,
अथवा हरा-भरा कर दो;

कहें सभी-आहा ! तुमने वह,
कैसा वृक्ष लगाया है !

—:०:—

अबोध

आधी रात, पुञ्जीभूत तम से भरी हुई,
सन्न, किसी डर से डरी हुई,
पाकर न इष्ट मग,
पग को उठाकर भी रखती नहीं थी डग !
किन्तु जानकी की मां सकी न टाल
क्षण काल
निज चिरयात्रा, बिना जाने देश के लिये
चली गई युग्म नेत्र बन्द किये।
उस तमसा का मर्म-भेद कर,
घोरतर शान्ति-समुच्छेद कर,
हा-हा-कार घर में हुआ नया;
निशि का अटूट वह मौनव्रत टूट गया !
किन्तु यह सारा हाल,
जानकी न जान सकी, बेखबर सोती हुई।
जागी जब प्रातः काल,
हेतु कुछ जाने बिना शङ्कित-सी होती हुई
"मां, मां" कह
रो उठी तुरन्त वह।
पोंछ निज नेत्र-नीर अञ्चल के पट से,
जीजी गई उसके समीप उठ झट से।

ज्यों-त्यों कर मन को कड़ा किया,
और पुचकार उसे गोद में उठा लिया।
एकाएक अर्थी पर
मां को पड़ी देख कर,
जीजी की गोदी से कूद पड़ने के लिए,
करके करुण रोर
रोकर लगाने लगी पूरा जोर।
"जाते हैं कहां वे अरे मां को लिये!
मुझको इसी पर बिठा दे; अरी जीजी! कह,
खटिया-सी कैसी यह!
छोड़ती नहीं क्यों मुझे,
देख, अभी मां से पिटवाऊँ तुझे!
हा-हा करती हूँ, देख आने दे!
जीजी अरी, छोड़ मुझे मां के साथ जाने दे।"
किन्तु हाय! जीजी जकड़े ही रही उसको।
छाती से लगाके पकड़े ही रही उसको।
बस, वह रोती ही रही वहां,
जान भी सकी न यह—मां चली गई कहां!

श्रीनारायण चतुर्वेदी 'श्रीवर' एम० ए० एल० टी०

[जन्म सम्वत् १९५२]

आप अंगरेजी और हिन्दी के मर्मज्ञ हैं। प्रकृत कवि भी हैं। लखनऊ के कान्यकुब्ज इण्टरमीडियट कालेज के कई वर्ष तक प्रिंसिपल रह चुके हैं इस समय संयुक्त प्रान्तीय शिक्षा-विभाग में उच्च पद पर हैं। 'चारण' नाम की कविता-पुस्तक आपकी प्रकाशित हो चुकी है। अन्य कई छोटी-मोटी गद्य-पुस्तकें भी लिखी हैं। 'समुद्र लहर की आत्मा' नाम का एक अच्छा काव्य-ग्रन्थ अभी प्रकाश में नहीं आया है। बालोपयोगी पद्य लिखने में आप बड़े पटु हैं। 'शतदल कमल' नाम की पुस्तक अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। उसी से यह 'सप्त-रङ्ग' कविता उद्‌धृत की गई है। अंगरेजी कविता के छन्द का अनुकरण इसमें प्रत्यक्ष द्रष्टव्य है।

❀ ❀ ❀

सप्त रङ्ग

सप्त रङ्ग, एक रङ्ग—एक रङ्ग, सप्त रङ्ग
एक में अनेक—औ अनेक एक
व्योम बीच सूर्य किरण खीचें हम श्वेत वरण
सप्त अश्व दिव्य सुरथ-भूषण है नाम
सूर्य वंश के हैं अंश विमल वंश सूर्य वंश
ज्योति पुञ्ज, तेज पुञ्ज, रञ्जक तिहु-धाम

❀ ❀ ❀

रुधिर रक्त, हृदय रक्त, कमल रक्त, नयन रक्त,
उषादेवि रक्त, बाल किरण रक्त,
जीवन-जल रक्त, उदयाचल रक्त,
(सब मिलकर)
सप्त रङ्ग, एक रङ्ग—एक रङ्ग, सप्त रङ्ग
एक में अनेक—औ अनेक एक

❀ ❀ ❀

नारंगी विवाह-वसन, नारंगी सुयुद्ध-वसन
जौहर रङ्ग लाय, नारंगी कषाय
कामना उठाय, नारंगी बुझाय
(सब मिलकर)
सप्त रङ्ग, एक रङ्ग—एक रङ्ग, सप्त रङ्ग
एक में अनेक—औ अनेक एक

❀ ❀ ❀

कृष्ण-वसन पीत, दामिनि-द्युति पीत,
पीत है प्रकाश, पीत तिमिर-नाश,
(सब मिलकर)

सप्त रङ्ग, एक रङ्ग—एक रङ्ग, सप्त रङ्ग
एक में अनेक—औ अनेक एक

❀ ❀ ❀

शस्य हरित, पर्ण हरित,
प्रकृति हरित, जगत हरित,
हरित पत्र धान, हरित पीय पान,
हरित प्रकृति हास, नयन सुखद आस,
(सब मिलकर)

सप्त रङ्ग, एक रङ्ग—एक रङ्ग, सप्त रङ्ग
एक में अनेक—औ अनेक एक

❀ ❀ ❀

नील कृष्ण, नील विष्णु, नील राम, नील श्याम,
जलधर वरनील, जमुना जल नील,
नीलम आकाश, सिंधु का प्रकाश,
(सब मिलकर)

सप्त रङ्ग, एक रङ्ग—एक रङ्ग, सप्त रङ्ग
एक में अनेक—औ अनेक एक

❀ ❀ ❀

नीलकंठ, गरल कंठ, नीलांवुज, जल तरङ्ग
नीलिमा निवास, हिमनद में भास,
तत्व जो अकाश, नीलिमा प्रकाश
(सब मिलकर)

सप्त रंग, एक रंग—एक रंग, सप्त रंग
एक में अनेक—औ अनेक एक

❀ ❀ ❀

बैंजनी वनप्स सुमन, औ हैं कचनार कुसुम,
बैंजनी तुषार, गिरवर के पार,
बैंजनी समान, रंग है न आन,
(सब मिलकर)
सप्त रंग, एक रंग—एक रंग, सप्त रंग
एक में अनेक—औ अनेक एक

❀ ❀ ❀

(सब मिलकर)
गंग धवल, भस्म धवल, नन्दी कर्पूर धवल,
हिमि-गिरि-वर-शृङ्ग धवल, मंगलमय शंभु धवल,
धवल कुन्द-कास, धवल चन्द्र-हास,
धवल क्षीर-सिंधु, धवल शरद-इन्दु,
सप्त रंग, एक रंग—एक रंग, सप्त रङ्ग
एक में अनेक—औ अनेक एक।

['शतदल कमल' से]

वियोगी हरि

[जन्म संवत् १९५३]

आपका नाम तो पं० हरिप्रसाद द्विवेदी है, पर कवि-समाज में आप 'वियोगी हरि' नाम से ही प्रसिद्ध हैं। ब्रजभाषा के आप वर्तमान समय में एक प्रतिनिधि कवि हैं और ब्रजभाषा में ही लिखित आपकी वीर-सतसई पर आपको हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सुप्रसिद्ध मंगलाप्रसाद पारितोषिक दिया जा चुका है। आप बड़े भावुक हैं, गद्य और पद्य दोनों ही में आपकी भावुकता प्र[illegible] होती है। अष्टछाप के सखी सम्प्रदाय वाले कवियों के ढंग पर पद लिखने में आप बड़े पटु हैं। 'साहित्यविहार' श्री छद्म योगिनी (नाटिका) कवि कीर्तन, अनुराग—वाटिका तथा 'आंख पर हिन्दी कवि' आदि पुस्तकें भी आपकी निकल चुकी हैं।

❀ ❀ ❀

शुकदेव

है यदि पुत्र स्वर्गप्रद तो फिर धर्म निरर्थक ही है,
जिनके बहुत पुत्र हैं उनके जीवन सार्थक ही हैं।
बहु सुत जननी खरी, कूकरी, अधम शूकरी नारी;
नखी नागिनी आदि जीव क्या सभी स्वर्ग-अधिकारी ?॥१॥
क्षुद्र जीव समुदाय सभी यदि पुत्रवान होने से—
सहज ऊर्ध्वगति पा सकते हैं विषय-बीज बोने से—
तो फिर वृथा कर्म साधन सब आश्रम-धर्म वृथा है;
स्वर्ग लाभ करने की क्या ही सच्ची सहज प्रथा है !॥२॥
कौन नर्क जावेगा ? हैं यदि सभी स्वर्ग-अधिकारी,
ऐसा क्षुद्र तर्क करते क्यों ? होकर ब्रह्म-विचारी।
स्वर्गवास, यश, पौरुषादि यदि पुत्र-लाभ से पाते—
कर लालन-पालन ही उसका, कौन यमालय जाते ? ॥३॥
ऐसे नश्वर गृह-सुख से क्या ज्ञानी मोहित होगा ?
जिसमें जरा-मरण का जिसने सदा दुःख ही भोगा।
हितकर समझ अंक में जिनके गृही सदा सोते हैं,
वे ही सुत, वनितादि मूढ़ के प्रति-बन्धक होते हैं ॥४॥
समझ चुका जो भेद जगत का है यह 'मिथ्या माया'
उसके आगे सभी धूल है कनक, कामिनी, काया।
यह यौवन गिरि-नदी वेग सम उसको लख पड़ता है,
क्षणिक शरीर जान यम से भी बहु ठोंक लड़ता है ॥५॥
जग-असारता, आयु-चपलता, नश्वरता भोगों की,
देख २ भी नहीं चिकित्सा की जिसने रोगों की।

उस अन्धे-को जन्म-मरण की बदी भोगमानी है,
जीवन उसका पाप, ताप की बनी राजधानी है ॥६॥
सूर्योदय के साथ अस्त यदि उसका नियमित होगा ?
धीरे-धीरे जीवन भी तब क्या न अस्तमित होगा ?
किन्तु, अहो ! आश्चर्य महा है, जीव मूढ़ है कैसा ?
इस आसार संसार मोह में पगा हुआ जो ऐसा ॥७॥
जन्म-जरा को देख नहीं कुछ मरने का भय खाता,
मोहमयी मदिरा निशिवासर है पीता ही जाता।
ऐसे ज्ञानशून्य पथ का क्या शुक अनुसरण करेगा ?
इन कामान्ध विमूढ़ जनों का क्या अनुकरण करेगा ?॥८॥

वीर सतसई के दोहे

आदि मध्य अवसान हू, जामें उदित उछाह।
सुरस बीर इकरस सदा, सुभग सर्व रस-नाह॥ १॥
सदय बिवेकी सत्यब्रत, सुहृद लेखियतु सूर।
अबिवेकी क्रोधी कुटिल, कायर कहियतु क्रूर॥ २॥
कादर तौ जीवत मरत, दिन में बार हजार।
प्रान पखेरू बीर के, उड़त एकही बार॥ ३॥
अरे फिरत कत बावरे, भटकत तीरथ भूरि।
अजौं न धारत सीस पै सहज सूर-पग-धूरि॥ ४॥
लै निज तंत्री छेड़ि दै, कवि वह राग अभंग।
उठे धार तें ओज की, नभ लगि तुंग तरंग॥ ५॥
रे विषयी प्रेमी बनत, नैकु न लागत लाज।
केते कठिन-कपोत-ब्रत, पालन हारे आज॥ ६॥

लोटि-लोटि जापै भये, धूरि-धूसरित आज।
वत्स तुम्हारे हाथ है, ता धरनी की लाज ॥ ७ ॥

जुग-जुग अकह-कहानियां, कहि हैं कवि-कुल-गाय।
धनि भारत भट नारियां रह्यो सुजसु चहुँ छाय ॥ ८ ॥

अहे-अहेरी यह कहा कादर करत अहेर।
क्यों न लपकि ललकारि तूं पकरि पछारत सेर ॥ ९ ॥

जित बिनासु आवन चहतु, पठवतु प्रथम बिलासु।
मति बिलासु मुंह लाइयो, ऐहै नतरु बिनासु ॥१०॥

करत शक्ति व्यय व्यर्थ जे, बिनु बिवेक, बिनु हेतु।
मेटत ते सुख-शांति कौ, सहज सनातन सेतु ॥११॥

अब-अब तौ कब तें कहत सध्यो न अबलौं तंत्र।
वह अब कब ऐहै जबै, ह्वैहै सिद्ध सुमंत्र ॥१२॥

परखतु जीवन-जौहरी प्रान-रत्न जहँ गूढ़।
ता सांचे संसार को, कहत असांचो मूढ़ ॥१३॥

त्याग-त्याग कत बकत रे, राग त्याग अति दूर।
त्याग ताग ही तें बँधे, यती सती अरु सूर ॥ १४ ॥

अपनावत अजहूं न जे, अपने अंग अछूत।
क्यौं करि ह्वै हैं धूत वै, करि कारी करतूत ॥१५॥

दीनन देखि घिनात जे, नहिं दीनन सों काम।
कहा जानि ते लेत हैं, दीनबंधु कौ नाम ॥१६॥

कोरी भोरी भावना, ऐहै काम न आज।
बिनु साधे सुचि साधना, नहि सरि हैं कछु काज ॥१७॥

बिना मान तजि दीजियो, स्वर्गहुँ सुकृत-समेत।
रहै मान तौ कीजिए, नरकहुं नित्य निकेत ॥१८॥

साधत साधन एक ही, तजि अनेक बुधि-सीम।
धनुष-सिद्ध अर्जुन भयो, गदा सिद्ध भो भीम ॥१६॥
कठिन राम कौ नाम है, सहज राम कौ नाम।
करता राम कौ काम जे, परत राम सों काम ॥२०॥
नभ जिमि बिन ससि सूर के, जिमि पंछी बिन पांख।
बिना जीव जिमि देह तिमि, बिना ओज यह आंख॥२१॥

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

[जन्म संवत् १६५५]

'निराला' जो वर्तमान रहस्यावाद स्कूल के एक प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। आपकी कविताओं में दार्शनिकता और आध्यात्मिकता की मात्रा विशेष रूप से सन्निविष्ट है। गूढ़ भावों को गूढ़ और सरल दोनों ही प्रकार की भाषा में चित्रित करना आपकी विशेषता है। सूफ़ी सिद्धान्तों की छाया आपकी कविता पर पड़ी जान पड़ती हैं खड़ी बोली में आपकी रहस्यवादमयी कविताओं का संग्रह 'परिमल' और 'अनामिका' नाम से प्रकाशित हुआ है। ब्रजभाषा पर भी आप का अधिकार है जैसा कि आपके द्वारा अनुवादित 'गोविंददास-पदावली' (अप्रकाशित) के देखने से जान पड़ता है। आपकी कविता में कला का अच्छा विकास हुआ है।

❀ ❀ ❀

प्रभाती

प्रिय, मुद्रित दृग खोलो !
गत स्वप्न-निशा का तिमिर जाल
नव किरणों से धोलो—
मुद्रित दृग खोलो !
जीवन-प्रसून वह वृन्तहीन
खुल गया उषा-नभ में नवीन,
धाराएँ ज्योति-सुरभि उर भर
वह चलीं चातुर्दिक कर्म-लीन,
तुम भी निज तरुण-तरङ्ग खोल
नव अरुण-सङ्ग होलो—
मुद्रित दृग खोलो !
वासना-प्रेयसी बार-बार
श्रुति-मधुर मन्दस्वर से पुकार
कहती, प्रतिदिन के उपवन के
जीवन में, प्रिय, आई बहार
बहती इस विमल वायु में
बह चलने का बल तोले—
मुद्रित दृग खोलो !

——

भारत की विधवा

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,

वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है।

षड्ऋतुओं का शृङ्गार,
कुसुमित कानन में नीरव पद-संचार,
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है,
उसका एक स्वप्न अथवा है।

उसके मधु-सुहाग का दर्पण,
जिसमें देखा था उसने
बस एक बार बिम्बित अपना जीवन-धन,
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा—वह ध्रुवतारा—
दूर हुआ वह बहा रहा है
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा।

हैं करुणा-रस से पुलकित इसकी आंखें,
देखा तो भीगीं मन-मधुकर की पांखें;
मृदु रसावेश में निकला जो गुञ्जार
वह और न था कुछ, था बस हा-हा-कार।

उस करुणा की सरिता के मलिन-पुलिन पर,
लघु टूटी हुई कुटी का मौन बढ़ाकर,
अति छिन्न हुए भीगे अञ्चल में मन को—
मुख-रूखे, सूखे अधर—त्रस्त चितवन को
वह दुनियां की नजरों से दूर बचाकर
है रोती अस्फुट स्वर में,

सुनता है आकाश धीर, निश्चल समीर—
मृदु सरिता की लहरें भी ठहर-ठहर कर।
यह दुःख वह, जिसका नहीं कुछ छोर है
दैव ! अत्याचार कैसा घोर और कठोर है !
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रुजल ?
या किया करते रहे सबको विकल !
ओसकण-सा पल्लवों से झर गया
जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया ॥

———

सुमित्रानन्दन 'पन्त'

[जन्म संवत् १९५७]

पन्त जी रहस्यवादी कविता-स्कूल के एक प्रमुख कवि हैं, किंतु प्रकृत सौंदर्य में सौकुमार्य का दर्शन अन्य सहगामी कवियों की अपेक्षा यह कुछ अधिक करते हैं। इनकी रचनाओं में अपेक्षा-कृत जटिलता का भी अभाव है। कोमलता इनकी रचना का प्रधान माधुर्य है— इतना कि जहां अन्य कवियों में उसका अन्त हो जाता है, वहां से उसका आरम्भ इनमें होता है। इनकी कविता पर रवींद्र बाबू की छाप है। और सत्य ही इन्होंने 'आह' में संगीत का दर्शन किया है। 'पल्लव' और 'वीणा' नाम के दो संग्रह-ग्रन्थ इनकी कविताओं के प्रकाशित हो चुके हैं।

* * *

आँसू

कल्पना में है कसकती वेदना।
अश्रु में जीता सिसकता गान है;
शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है।
वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
उमड़ कर आंखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।

हाय! किसके उर में
उतारूं अपने उर का भार!
किसे अब दूं उपहार
गूँथ यह अश्रुकणों का हार!!

मेरा पावस ऋतु-सा जीवन
मानस-सा उमड़ा अपार मन;
गहरे, धुँधले, धुले, सांवले
मेघों से मेरे भरे नयन।

इन्द्रधनु-सा आशा का सेतु
अनिल में अटका कभी अछोर,
कभी कुहरे-सी धूमिल, घोर,

❀ ❀ ❀

दीखती भावी चारों ओर!

देखता हूँ, जब पतला

इन्द्रधनुषी-सा हलका
रेशमी घूँघट बादल का
खोलती है कुमुद कला
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अन्तर्धान
न जाने तुमसे मेरे प्राण
चाहते हैं क्या हा आदान ?

छाया

कहो, कौन हो दमयंती-सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ? तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल-सा निष्ठुर कोई ?
पीले पत्तों की शैय्या पर
तुम विरक्ति-सी मूर्छा-सी
विजन विपिन में कौन पड़ी हो
विरह-मलिन दुख-विधुरा-सी ?
पछतावे की परछाई-सी
तुम भूपर छाई हो कौन ?
दुर्बलता-सी अँगड़ाई-सी,
अपराधी-सी, भय से मौन ?

❀ ❀

निर्जनता के मानस-पट पर
बार-बार भर ठंडी सांस—

क्या तुम छिपकर क्रूर काल का
लिखती हो अकरुण इतिहास ?

❀ ❀

निज जीवन के मलिन पृष्ठ पर
नीरव शब्दों में निर्भर

❀ *

किस अतीत का करुण चित्र तुम
खींच रही हो कोमलतर !

❀ ❀

दिनकर-कुल में दिव्य जन्म पा,
बढ़कर नित तरुवर के सङ्ग,
मुरझे पत्रों की साड़ी से
ढँककर अपने कोमल अंग;

❀

पर सेवा-रत रहती हो तुम
हरती नित पथ-श्रान्ति अपार।

❀ ❀

हां सखि ! आओ बांह खोल हम
लगकर गले जुड़ा लें प्राण।
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अन्तर्धान।

सुभद्राकुमारी चौहान

[जन्म संवत् १९६७]

वर्तमान हिन्दी कवियित्रियों में आपका विशेष स्थान है। आप राष्ट्रीय कवयित्री हैं। प्रसाद गुण और प्रांजलता इनकी रचनाओं की विशेषता है। करुण रागिनी के भीतर वीर संगीत भरने में यह विशेष पटु हैं। देश का उज्ज्वल भविष्य इनका दृष्टि-कोण है। खड़ी बोली की कविताएँ ही इन्होंने लिखी हैं, जिनका संग्रह 'मुकुल' नाम से प्रकाशित हुआ है। श्री ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान बी. ए., एल. एल. बी. की धर्मपत्नी हैं तथा जबलपुर में रहती हैं।

❀ ❀ ❀

ठुकरा दो या प्यार करो

देव ! तुम्हारे कई उपासक
कई ढङ्ग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे
कई रंग की लाते हैं॥

धूमधाम से साजबाज से
मन्दिर में वे आते हैं।
मुक्ता-मणि बहुमूल्य वस्तुएँ
लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं॥

मैं ही हूँ गरीबनी ऐसी
जो कुछ साथ नहीं लायी।
फिर भी साहस कर मन्दिर में
पूजा करने हूँ आयी॥

धूप दीप नैवेद्य नहीं है
झांकी का शृङ्गार नहीं।
हाय गले में पहनाने को
फूलों का भी हार नहीं

मैं कैसे स्तुति करूं तुम्हारी,
है स्वर में माधुर्य नहीं।
मन का भाव प्रकट करने को
वाणी में चातुर्य नहीं॥

नहीं दान है, नहीं दक्षिणा
खाली हाथ चली आयी।

पूजा की विधि नहीं जानती
फिर भी नाथ! चली आयी॥

पूजा और पुजापा प्रभुवर!
इसी पुजारिन को समझो॥
दान दक्षिणा और निछावर
इसी भिखारिन को समझो॥

मैं उन्मत्त-प्रेम की लोभी
हृदय दिखाने आयी हूँ॥
जो कुछ है, बस यही पास है;
इसे चढ़ाने आयी हूँ॥

चरणों पर अर्पित है, इसको
चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है—
ठुकरा दो या प्यार करो॥

----०-----

मातृ-मन्दिर में

व्यथित है मेरा हृदय-प्रदेश
चलूँ किसको बहलाऊँ आज?
बता कर अपना दुख-सुख उसे
हृदय का भार हटाऊँ आज॥
चलूँ मां के पद-पङ्कज पकड़
नयन-जल नहलाऊँ आज॥
मातृ-मन्दिर में-मैंने कहा—
चलूँ दर्शन कर आऊँ आज॥

किन्तु यह हुआ अचानक ध्यान
दीन हूं, छोटी हूँ अज्ञान।
मातृ-मन्दिर का दुर्गम मार्ग
तुम्हीं बतला दो हे भगवान!
मार्ग के बाधक पहरेदार;
सुना है, ऊँचे से सोपान।
फिसलते हैं ये दुर्बल पैर
चढ़ा दो मुझको हे भगवान!

अहा! वे जगमग-जगमग जगीं
ज्योतियां दीख रही हैं वहां।
शीघ्रता करो, वाद्य बज उठे
भला मैं कैसे जाऊँ वहां?
सुनाई पड़ता है कलगान;
मिला दूँ मैं भी अपनी तान।
शीघ्रता करो, मुझे ले चलो
मातृ-मन्दिर में हे भगवान!!

चलूँ मैं जल्दी से चढ़ चलूँ
देख लूँ मां की प्यारी मूर्ति।
अहा! वह मीठी-सी मुसकान
जागती होगी न्यारी स्फूर्ति।
उसे भी आती होगी याद?
उसे हां, आती होगी याद।
नहीं रूठूँगी मैं, लो, आज
सुनाऊँगी उसको फरियाद॥

कलेजा मां का, मैं सन्तान;
करेगी दोषों पर अभिमान।
मातृ-वेदी पर घण्टा बजा,
चढ़ादो मुझको हे भगवान॥
सुनूँगी माता की आवाज़,
रहूँगी मरने को तैयार।
कभी भी उस वेदी पर देव!
न होने दूंगी अत्याचार॥

न होने दूँगी अत्याचार
चलो मैं हो जाऊँ बलिदान।
मातृ-मन्दिर में हुई पुकार —
चढ़ा दो मुझको हे भगवान!!

महादेवी वर्मा बी० ए०

[जन्म संवत् १९६४]

कविता के रहस्यवाद-स्कूल की आप एकमात्र प्रतिनिधि कवयित्री हैं। आपकी कविता में कोमल-रसों का प्रस्फुटन हुआ है, जो आप के आंतरिक वेदनामय मनोरहस्य का उद्घाटन करता है। प्रकृति में अँतरिक्ष में, असीम और सीम के अंतराल में सर्वत्र आप एक करुण-रागिनी का संगीत सुनती हैं। आपका वर्तमान आपके उज्ज्वल भविष्य का संकेत करता है। 'नीहार' नाम से आपकी कविताओं का एक छोटा सा संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है।

❀ ❀ ❀

मुरझाया फूल

था कली के रूप शैशव—
में अहो सूखे सुमन !
हास्य करता था, खिलाती
अंक में तुझको पवन।
खिल गया जब पूर्ण तू—
मञ्जुल सुकोमल पुष्पवर !
लुब्ध मधु के हेतु मड़राने
लगे आने भ्रमर।
स्निग्ध किरणें चन्द्र को—
तुझको हँसाती थीं सदा,
रात तुम पर वारती थी
मोतियों की सम्पदा।
लोरियां गाकर मधुप
निद्रा विवश करते तुझे,
यत्न माली का रहा—
आनन्द से भरता तुझे।
कर रहा अटखेलियां—
इतरा सदा उद्यान में ?
अन्त का यह दृश्य आया—
था कभी क्या ध्यान में ?
सो रहा अब तू धरा पर—
शुष्क बिखराया हुआ,
गन्ध कोमलता नहीं
मुख मंजु मुरझाया हुआ।

आज तुझको देखकर
चाहक भ्रमर भाता नहीं;
लाल अपना राग तुझ पर
प्रात बरसाता नहीं
जिस पवन ने अङ्क में—
ले प्यार था तुझको किया,
तीव्र झोंके से सुला
उसने तुझे भू पर दिया।
कर दिया मधु और सौरभ
दान सारा एक दिन,
किन्तु रोता कौन है
तेरे लिये दानी सुमन!
मत व्यथित हो फूल! किस को
सुख दिया संसार ने?
स्वार्थमय सब को बनाया—
है यहां करतार ने।
विश्व में हे फूल! तू
सबके हृदय भाता रहा!
दान कर सर्वस्व फिर भी
हाय हर्षाता रहा।
जब न तेरी ही दशा पर
दुख हुआ संसार को,
कौन रोयेगा सुमन!
हम से मनुज निःसार को?

उदयशंकर भट्ट शास्त्री

[जन्म संवत् १६५४]

भट्ट जी 'हिन्दी (खड़ी बोली)' के उदीयमान कवि हैं। गद्य भी लिखते हैं। कितने ही गद्य-पद्य-लेख आपके प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में निकल चुके तथा निकलते रहते हैं। हाल ही में 'तक्षशिला' नामक काव्य-ग्रंथ आपका प्रकाशित हुआ है। भाषा पर अधिकार तथा प्रकृति पर्यवेक्षण में रुचि है। पंजाब के हिंदी उन्नायकों में आपका अच्छा स्थान है। इन दिनों आप लाहौर में निवास करते हैं।

❀ ❀ ❀

पञ्जाब-प्रशस्ति

(१)

आर्य्य-जाति का उज्ज्वल भूतल
पञ्चनदों का सुन्दर देश
स्वर्ग विभूति भरा संसृति का
भूतिमान भारत—राकेश

स्वर्ग छटा की स्वच्छच्छवि-सा
क्षोणी रमणी-सा मृदुहास
झलक रहा है भारत भू पर
जिसका उज्ज्वल-सा इतिहास

(२)

जहां सदर्प सिन्धु-नद बहता
सब सरितों का कर उपहास
लिये अनन्त अशान्त तोयनिधि
क्षार-सिन्धु-मद का उल्लास

जहां विशाल नील धारायें
नील गगन का गा इतिहास
थिरक-थिरक कर प्रभा निरखतीं
तारों का समरूप विलास

(३)

जहां चन्द्रभागा, इरावती,
व्यास, वितस्ता तथा शतद्रु
अपनी अविरल धार बहाकर
भरतीं हृदय भावना भद्र

श्री गिरिवर गिरिराज हिमालय
जिसको देता छाया दान
विश्व-विभूति जहां फैलाती
नित नूतन अपना अभिमान

(४)

प्रकृति विहार-स्थल कुसुमाकर
काश्मीर जिसका है छोर
मृग-मद से उन्मत्त मृगी की
सचकित नयनों की-सी कोर

जहां मनुज रम्भाएँ करतीं
क्रीड़ा कलित ललित आमोद
स्वर्ग छटा न्योछावर होती
जिसके कान्तारों को शोध

(५)

गगनालिङ्गत 'निषाध' भूधर–
श्रेणी हैं पश्चिम की ओर
जो बलमय भारत को करती
अन्य देश का बल झकझोर

जहां एक घाटी खैबर की
व्यवसायी-दल-मार्ग प्रशस्त
भारतीय कौशल शिल्पों से
कला-कलापों से अभ्यस्त

(६)

अधर सुधा-रस भासित मुखछवि
ऋषि जन जिस थल करते गान

वैदिक गीतों का अतीत में
जहां सभ्यता का उत्थान
जहां ब्राह्मणों ने ब्राह्मण रच
किया ऋचाओं का आख्यान
आरण्यक, उपनिषद् दर्शनों
का प्रतिमामय-सा-आह्वान

(७)

हृदयाह्लाद भक्तनर भूषण
जहां हुए प्रह्लाद नरेश
सत्याग्रह के, सत्य ज्ञान के
शुद्ध नीतिमय मूर्ति-विशेष
उन्मूलन कर दिये जिन्हों ने
पाप-पुञ्ज अथ मिथ्याचार
पाकर जिन्हें हुआ पावन यह
देश-भक्त का ले उपहार

(८)

पिछले युग में इसी देश ने
देखे हैं आक्रमण अनन्त
बाह्य शत्रुओं की सेना से
फैला जब जन मन आतंक
आर्य-सभ्यता की रक्षा के
लाले पड़े, हुआ सब छार
बानक बिगड़ा देख सुधारा
नानक गुरु ने ले अवतार

(९)

तेग़ धनी, अवनी के रक्षक
तेग़ बहादुर गुरु गम्भीर
सन्त धर्म को राज्य धर्म में
दिया बदल जिसने आखीर

जिसमें राजस, सात्विक गुण का
हुआ अभ्युदय एक स्थान
जिसकी तीक्ष्ण कृपाण धार से
उड़ा शत्रु का सब सम्मान

(१०)

जिसकी पावन रज से गुरु ने
आजीवन कर धर्म-प्रचार
मृतप्राय हिन्दू-जीवन में
नव जीवन का किया प्रसार

सिर दे दिया, दिया टुक अपना
धर्म न पैतृक पथ कल्याण
किया विभव न्योछावर सारा
भारतीय गौरव के स्थान

(११)

जहां हुए गोविन्द अपर से
गुरु गोविन्दसिंह थे वीर
अरि दल-गंजन रण-रस-रंजन,
क्षमा-दया के सजग शरीर

सिक्ख धर्म के, वीर कर्म के
गौरवमय गुरु नय के धाम

गति-जीवन के, मति सज्जन के,
धन निर्धन के मुकुट ललाम

(१२)

जहां वीर माता के पय को
उज्ज्वल करते बालक वीर
जहां आर्य जन विस्मृति को
फिर पैदा करते दे सिर धीर
जहां विपत्ति-ग्रस्त नरों का
अपना गौरव एक सहाय
जहां धर्म की ठीक हक़ीकत
दिखला गये हक़ीकतराय

(१३)

वह पञ्जाब-स्रोत आर्यगुण—
गौरव सुन्दर देश ललाम
ऋषियों की पावन प्रसूति
अथ जीवन की विभूति अभिराम
भारत का विशाल वक्षःस्थल
रण-आंगन का रक्षा द्वार
धन जन भरा भूरि अन्नों का
वसुन्धरा-थल, प्रकृति-विहार

['तक्षशिला' से]

परिशिष्ट

१—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

कालराति–मृत्यु का समय, कालरात्रि। बयस–वयस, उम्र। अमल–मलरहित, उज्ज्वल। धूरि-धूसरित–धूलि में भरे हुए। कुल-कान–कुलकी मर्य्याद। मयन-कामदेव। हीरक--हीरा। लोल–चञ्चल। स्वर्ग-सोपान–स्वर्ग की सीढ़ी। ऐरावत–इन्द्र का हाथी। सगर-सुवन–सूर्य्यवंशी राजा सगर के साठ हज़ार पुत्र। अंकम–अङ्क में। अम्बुज–अम्बु+जा–कमल।

२—प्रताप नारायण मिश्र

नक न्याय गयन–नाक तक नहा गये अर्थात् नाक में दम आगया। बुझातखन–बुझते समय। निखवख–बिलकुल। बाजी-बेरियां–बाज़ वक्त। री रौ–रीढ़ भी। अतिसै–अतिशय, बहुत। बिस्तारे हो–विस्तृत किये हो। बुधवारे–बुद्धिमान्।

३—नाथूराम "शङ्कर" शर्म्मा

ऋजु–सीधे। ध्रुव–निश्चित, अटल। सविता–ईश्वर, सूर्य। कविता–महाकवि, संस्कृत 'कवितृ' शब्द से बना है—(कविता-कवितारो-कवितारः)। प्रजाधर--राजा। सङ्गर–युद्ध। सुरभी–गाय। मुदिता–प्रसन्नता। समादर–आदर, सन्मान। कमला–लक्ष्मी। मत्सर–पाखण्ड। सुरपादप–कल्पवृक्ष। गाधिनन्दन–विश्वामित्र। वासव–इन्द्र। अधवर–अधर में, बीच में। शम्बुक–सीपी। छिति, क्षिति–पृथिवी। मृणाल–कमलनाल। करी, करि–हाथी। मकरन्द–सौरभ। साहित्य-सरोज–साहित्य रूपी कमल। पीयूष–अमृत। वर वर–सुन्दर वरदान।

४—श्रीधर पाठक

सान्ध्य-अटन—शाम के समय की सैर। विजन—सुनसान। लिहसा—लेसा या लिपटा। सद्य-उत्फुल्ल—तुरन्त का फूला हुआ। निभ—बहाने से। नभवृत्त—आकाश की छाती। दिनारि—सूर्य। पारणा—व्रत के बाद का भोजन। रक्त-रस-लिप्सु—रक्त-रस का लोभी। अन्वेषणायुक्त—खोज में लगा हुआ। क्रीड़नासक्त—खेलकूद में रत। अभ्र—आकाश। स्वर्ग्य—स्वर्ग के। गजराज के भाल का साज—गज-मुक्ता। उत्ताल—लम्बा चोड़ा। अभ्रान्त—भ्रांति रहित। रजनि-आनन—रात्रि का मुख। कान्त—सुन्दर। अनति, अन्+अति—अथवा नअति इति अनति—थोड़ी। गति—चाल। आलिङ्गिता—लिपटी हुई। कातर—करुण। मुकुरनि—शीशों में। चित्तरसारी—चित्रशाला। गह्वर—घना,गहरा। किङ्करता—सेवा। तुहिन-सिखर—बर्फ़ की चोटियां। मालिमाल—सिर को माला। खौर—त्रिपुण्ड। भ्राजति—शोभा देरही है। अद्रि-मंडल—पर्वत समूह। द्रोनाकार—द्रोन के आकार का। परिकल्पित—पहले से सोच करके। दच्छ तनया—सती। स्वयंभू—ब्रह्मा। पटी रहित—दिगम्बर, नंगा। भौन—भवन। ओक—स्थान। पुरन्दर—इन्द्र।

५—महावीरप्रसाद द्विवेदी

सौख्य—सुख देने वाली। वीरप्रसू—वीरों को जन्म देने वाली। शौर्य-भूमि—शूरता की भूमि। यान—सवारी। सविशेष—विशेषता सहित। रमेश—विष्णु। देवद्रुम—कल्पवृक्ष। विज्ञानी—दार्शनिक। सतत—हमेशा, निरन्तर। क्षणभंगुर—नाशवान्। वपु—शरीर। वायस—कौए। कंटकारि—कटक रूपी शत्रु। लंक—कमर।

६—अयोध्यासिंह उपाध्याय

नव-नलिनी—नई फूली हुई कमलिनी। विजित-जरा—बूढ़ी। किसलय—कोपल या पत्ता। अंभोज—कमल। मृदुरव--मृदुभाषण। समुद्विग्न—दुखी। समाकीर्ण—फैला हुआ। यजन—यज्ञ। निर्जरों-देवताओं। सद्म—घर। मुखरित—प्रतिध्वनित। सुफलक-सुत—अक्रूर। उन्मोचने—दूर करने को। नीप—कदंब। भानुजा—सूर्य पुत्री यमुना। पत—मर्यादा। साँसतें—कठनाइयाँ। सग—कुत्ता। आंजी—जिस आंख में अंजन दिया हुआ हो।

७—भगवानदीन

काव्याद्रि—काव्य के पहाड़। प्रभाकर—सूर्य। सेत—श्वेत, सफ़ेद पीतर—पीतल, धातु। मनहर—मन को हरने वाली। दुहिता—पुत्री। अभिराम—रम्य, रमणीक। आरियों—आर्यों। आह्लाद—हर्ष।

८—जगन्नाथदास "रत्नाकर"

अवराधे पै—आह्वान करने पर। नेह नाधे पै—नेह के सान्निध्य से अर्थात् स्नेहवश। वितुण्ड—हाथी। पच्छिराज—गरुड़। पुसकर—वह जलाशय जहां गजेन्द्र जल पी रहा था, पुष्कर। ललायो—पुचकारा, लालन किया। भुसुण्ड—सूँड। पुण्डरीक—कमल। कर कंजनि—कर कमल। पन्नगशिला—सर्पों की शिला। भव-विषधर—संसार रूपी नाग। मलिन्द—भौंरे। गिरिराज—गोवर्धन पर्वत। तमतोम—घना अंधकार। कलमस—पाप। मनसा—इच्छा। औनि, अवनि—पृथ्वी। अतन—आकार रहित, पार दर्शक। मंडलाकृत—मंडलाकार, गोल। बानक—बनाव। कलिन्द-नंदनी—यमुना। करारनि- कगार। त्रयताप दैहिक, दैविक, भौतिक ताप। गजन हारी—नाश करने वाली। कूंज—कुंजी।

६—राय देवीप्रसाद "पूर्ण"

घनसार—कपूर। विदूषत हैं—लज्जित करते हैं। अमन्द—चमकीले। सुरी—देवताओं की स्त्रियां। अली—अवली, पंक्तियां। कैरव—कोई, कोकाबेली (जो रात को फूलती है) जस—यश। सिखी—मयूरी। कुसुमाकर—वसंत। पिकी—कोयल। वीथिका—मार्ग। दीपी है—प्रकाशित है। नवनीति—मक्खन। मेधा—मस्तिष्क। जागरूक—जाग्रत्। विश्वरानी—संसार की रानी। अदेवन—राक्षस। मख-भूमि—यज्ञभूमि महाद्युति—महाज्योति। हुतासन—अग्नि। अलोल—स्थिर। अवनीतल—पृथ्वी तल

१०—रामचरित उपाध्याय

अनेश्वर—राजा। विरति—विरक्ति। रति—अनुराग। रमा—लक्ष्मी, दौलत। वृजिन—पाप, दुख। नय-परायण—नीति, निपुणता। रमण—प्रियतम। निगमागम—वेद शास्त्र। स्वमहिषी—अपनी भार्या लगुड़—लकड़ी, लाठी। शकुल—सौरी मछली। मुखरता—वाचालता। नयकोविद—नीतिज्ञ। जनकजा-गत—जानकी के लिए व्याकुल। पिशुनता—छल। रस-नाश-करी—रस का नाश करने वाली। मयसुता—मन्दोदरी। द्विरद के रद—हाथी के दांत। अजादिक—देवता आदि। वड़वानल—समुद्र की आग। द्युमणि—सूर्य। निकर—झुण्ड। गतचिन्त—चिन्ता रहित। मदिराक्षि—मदिरा के समान मादक आंख वाली।

११—सैयद अमीरअली

ललाम—सुन्दर। प्रवर्षण—एक पर्वत का नाम। अत्र—यहां हन्त—अफसोस। विजया—दुर्गा, विजय दशमी।

१२—कामताप्रसाद गुरु

हिये—हृदय से । गाज—बिजली । सूरमा—शूरवीर । व्योमि—आकाश । खगराज—गरुड़ । जन्म, लय—जीवन मरण ।

१३—गयाप्रसाद शुक्ल

अगम—अथाह । ऋतुराज—वसन्त । आधेय—आश्रित । शरद-राका-शशि—शरद का पूर्ण चन्द्र । दिवाकर—सूर्य । जलद—बादल । तौर—ढग । सौरभ—सुगन्ध । सुकरात—प्राचीन यूनान का एक दार्शनिक । भवजनित—सांसारिक । आमरण—मृत्यु पर्यन्त । मंसूर—एक सूफी दार्शनिक ।

१४—सत्यनारायण

अगाध—अथाह । हारी—हाली । बारन—हाथी । अलसाये—आलस करने लगे । विरद बानि—यश गाथा । बदत—कहते हैं । शरणापन्न—शरण में आया हुआ ।

१५—रूपनारायण पाण्डेय

प्रतीति—विश्वास । प्रशस्त—उन्नत, स्तुत्य । शस्य—धान । सुरभी—गाय । भूतल—पृथ्वी । प्रवाद—कहावत । समुहाय के—सामने आकर विडम्बना—जंजाल, झंझट । निदर्शन—दृष्टान्त ।

१६—रामचन्द्र शुक्ल

प्रतिरूप—समान । कलंब-करम्बित—कदम्ब मिश्रित । अंजन वर्ण—श्याम वर्ण । सित—श्वेत । मरक्त—पन्ना । कलाधर—चन्द्र । कुमुद—कोकाबेली । कछार—नदीतट की भूमि । नीड़—ठहरने की जगह, घोंसला । कबुरता—धुंधलापन । निदाघ—ग्रीष्म । कषाय—गेरुए रंग का । गिलाय—गिलहरी । नीहार—छाता । घाम—प्रकाश, धूप ।

१७—रामनरेश त्रिपाठी

अविरल–असाधारण। सुरतरु–कल्पतरु। विशृंखल–अस्तव्यस्त। जघन्य–घृणित, नीच। अकिञ्चन–दीन, असहाय। अलभ्य–कठिनाई से प्राप्य। उद्भव–पैदा करना। आत्म-सम्मति–अपना मत।

१८—मैथिलीशरण गुप्त

हुआ अग्र--आगे हो चुका, भूत काल। सुदत्त--चतुर मनुष्य। उच्छिष्ट--जूठन। निषिद्ध--त्याज्य। जगद्वन्द्य--संसारपूज्य। अमित--असीम। भारत--भरतवंशज, अर्जुन। करारोपण--हाथ रखना। अवसन्न--स्तम्भित। पार्श्व--बगल में। क्रीड़ाद्रि--विहार करने योग्य पर्वत। वरिष्ठ–श्रेष्ठ। अनिमेष–एकटक। सुधाकर–लक्ष्मी धृति–अष्टसिद्धियों में से एक। सुरप–इन्द्र। जय, विजय–इन्द्र के मुसाहिब। स्वस्तिवाद--आशीर्वाद। पद्मा–लक्ष्मी। वृत्त–चरित्र। सुस्मित–मुस्कुराते हुए। विख्यातकर्मा--कार्योंके लिये विख्यात, कर्मवीर। संयुक्ति–दाव पेंच। सत्वर–तुरन्त। पञ्चानन–सिंह। कर्त्तव्य-विमूढ़--असमंजस की दशा में। आकीर्ण-सेनार्णव--विस्तृत सैन्य सागर। कटूक्ति--तीखे शब्द। अभीष्ट--ध्येय। आन-शपथ। क्षतच्छिन्न--घायल। लयोनिडास--प्राचीन स्पार्टा का एक प्रमुख वीर। आजन्म-राष्ट्र-स्थिति योग्य कार्य--जीवन पर्यन्त राष्ट्र की स्थापना के योग्य कार्य। समवेदना-- सहानुभूति। उन्मेष--प्रकटीकरण। षड्रिपु–छः शत्रु, (काम,क्रोध,मद, लोभ, मोह, मत्सर)। वर्म–कवच। अलौकिक–लोकोत्तर।

१९—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

यतिवर–यतियों में श्रेष्ठ। सेव्य--सेवा करने योग्य, वंदनीय। कान्तार–वन। जराजीर्ण–पुराना होने के कारण जीर्ण। पर्ण-

कुटीर–झोपड़ा। अक्षय–अविनाशी । अंक–गोद ।

२०—जयशङ्कर "प्रसाद"

मलयानिल–मलय समीर । मधुकर--भौंरा । वृन्त--गुच्छा । कुसुमाकर–कामदेव । कुन्त—बर्छी, भाले के सदृश नुकीले बाण। सृजन–उत्पत्ति । वात–वायु । अविशेष–मृतशरीर। नीरव–शब्द-रहित। वल्लरी–लता । आभारी–झुका हुआ । अरण्य–वन । शिरस्त्राण–सिर का आच्छादन, मुकुट या पगड़ी । वीभत्स–डरावना । सत्व–अधिकार । राज्य-केन्द्र–राजधानी ।

२१—बदरीनाथ भट्ट

हृदय वेणु–हृदय की वंशी । तपजन्य–तपस्या का । संसृति–संसार । गुरुडम लीला–गुरु बनने का व्यापार ।

२२—ठाकुर गोपालशरण सिंह

पारावार–समुद्र। कविता-कामिनि-कान्त–कविता रूपी कामिनी का पति । पहुनाई–आवभगत । कुलिश–वज्र। चित्तचोर–चित्त का चुराने वाला । कीर--तोता ।

२३—मातादीन शुक्ल

सती-टोलियां–सती स्त्रियों के झुंड । रङ्गरेलियां–रङ्गरेलियां, क्रीड़ाएँ। जल्पना–लपलपाहट । वारिद-माला--घटाएँ । चन्द्रिका--चांदनी । भाग–भाग्य । ऊकठ–सूखा। कांपा–कंपा लासा, चिड़ियों को फँसाने के लिए। आपा–अपनापन । बांचते–पढ़ते । पाट पटम्बर–बहुमूल्य वस्त्र। सिहरकर–चौंककर । प्रतारणा–चोट । स्निग्ध–सरस । करतारी–सृष्टि-रचना-कौशल ।

२४—मुकुटधर पांडेय

किंशुक-कुसुम–टेसू का फूल । अंचल–छोर । मौरकर–आम में

बौर आना। बाल-विहग–चिरकुए, चिड़ियों के नवजात शिशु। व्यंग्य-हास–व्यग्यं की हँसी। कुटज–क़ुरैया का फूल। तरणि–सूर्य। लोनी–कोमल। वृन्तच्युत–गुच्छे से टूट कर गिरे हुए। आर्तत्राण–दुखियों के आधार या रक्षक।

२६—सियारामशरण गुप्त

शौर्य–शूरता। सदय–दयालु। पुंजीभूत–एकत्रित। चिरया–महायात्रा, मृत्यु। युग्म–दोनों। तमसा–अंधकार। समुच्छेद कर–भकरके। रोर–शोरगुल, चीत्कार।

२६—श्रीनारायण चतुर्वेदी

वरण–वर्ण, रङ्ग। सुरथ-भूषण–सूर्य। रञ्जक–प्रसन्न करने वाले। उदयाचल–पर्वत का नाम। जौहर–क्षत्राणियों का इतिहास-प्रसिद्ध जौहर, जिस के लिए वे केसरिया वस्त्र पहनती थीं। कामना–विषयवासना। पर्ण–पत्ता। जलधर–बादल। गरल–विष। नीलाम्बुज–नीला कमल। हिमनद–ग्लैशियर। बनप्स–बनप्सा। तुषार–कोहरा। कुन्दकास–कुन्द और कास के फूल।

२७—'वियोगीहरि'

स्वर्ग-प्रद–स्वर्ग देने वाला। खरी–गधी। नखी–जल जन्तु, सूंस। उर्ध्वगति–उच्चगति, स्वर्ग। आश्रम-धर्म–वर्णाश्रम धर्म। यमालय–नरक। गृही–गृहस्थ। प्रतिबंधक–बाधक। अस्तमिति–अस्तम्+इति, अंत में अस्त होना। शुक–शुकदेव। अवसान–अंत रस नाह–रसों का राजा। भूरि–बहुत। अभङ्ग–जो भङ्ग न हो, अविरल। ओज–तेज, प्रकाश। तुङ्ग–ऊँची। कपोत-व्रत–चुपचाप दूसरों के अत्याचारों को सहना। अकह–अकथनीय। अहेरी–शिकारी। सेत–मर्यादा। सुमंत्र–साबर मंत्र। धूत–अवधूत, संत। निकेत–घर।

२८—उदयशंकर भट्ट

भूतिमान–ऐश्वर्यशाली। क्षौणी–पृथ्वी। सदर्प–साभिमान। तोयनिधि–पानी का भण्डार, समुद्र। मृगमद–कस्तूरी। रम्भा–अप्सरा। निषाध–हिन्दू कुश पर्वत। गगनालिङ्गित–गगनचुम्बित। कलाप–समूह। अतीत–भूतकाल। ब्राह्मण–ब्राह्मण–ग्रन्थ। तेग-धनी–तलवार के धनी। अपर–अन्य। नय–नीति। पय–दूध। वसुंधरा–पृथ्वी।

२९—सूर्यकान्त त्रिपाठी

मुद्रित–बन्द। प्रेयसी–प्यारी। कालताण्डव–मृत्यु का ताण्डव, नृत्य। मधु-सुहाग–प्रेम सौभाग्य। पांखें-पंख। पुलिन–किनारा। त्रस्त–भयभीत। अस्फुट–अधखुला।

३०—सुमित्रानन्दन पन्त

उपहार–भेंट। भावी–भविष्य, होनहार। आदान–बदला। नल–दमयन्ती का पति। दुःख-विधुरा–दुख से पीड़ित। अकरुण–निर्दय। पथश्रांति–मार्ग की थकावट। द्रुत–शीघ्र।

३१—सुभद्राकुमरी चौहान

मुक्तामणि–मोती। पुजापा–पूजन की सामग्री। वाद्य–बाजे। स्फूर्ति–दीप्ति।

३२—महादेवी वर्मा

लुब्ध–लोभी। लोरियां–निद्रा-गीत। राग–स्नेह। निःसार–निरर्थक।

—:०:—